~||अंतरा-शब्दशक्ति||~

मासिक वेब पत्रिका

अंक 1 जुलाई 2017 प्रवेशांक

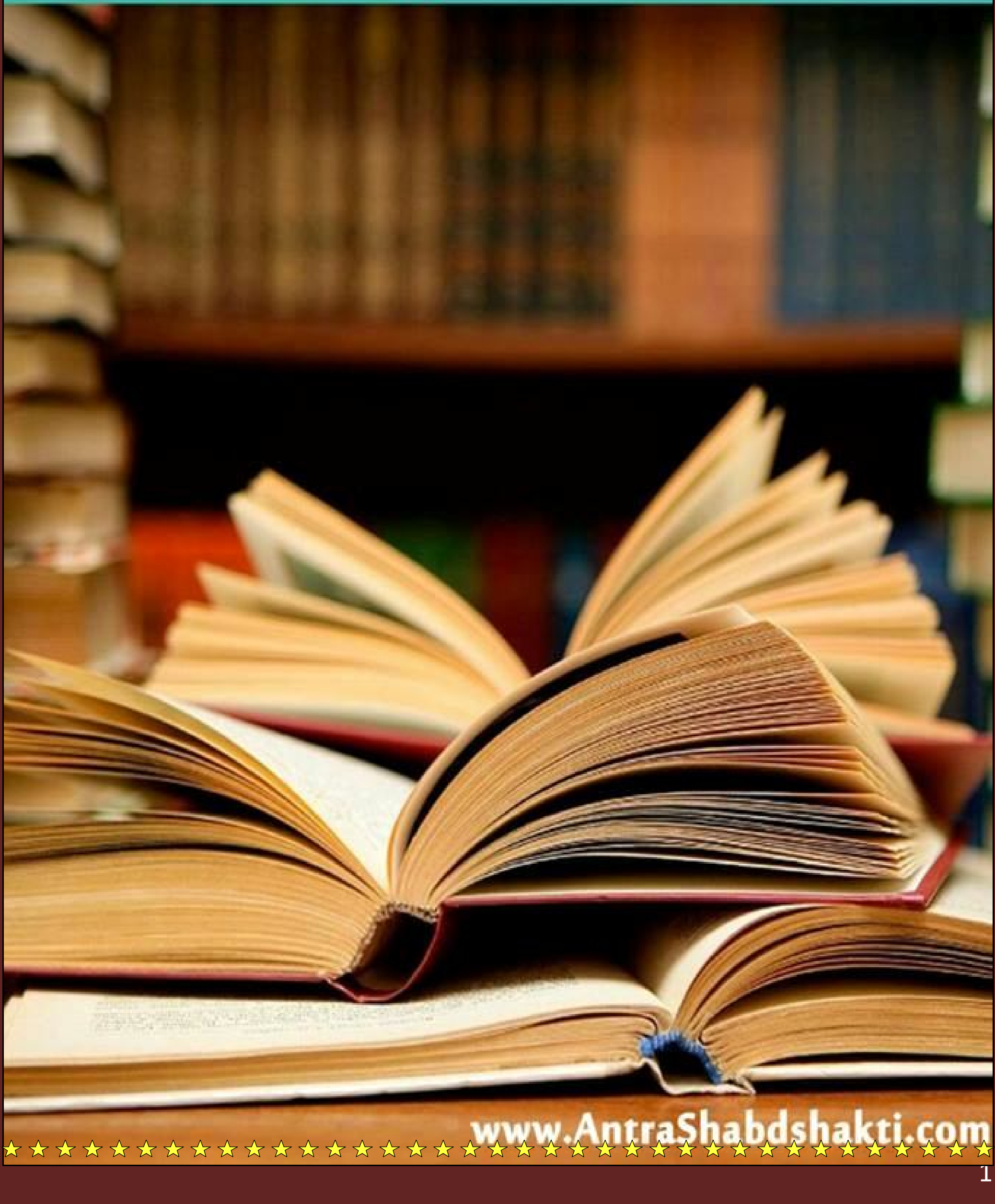

||~अंतरा-शब्दशक्ति~||

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन

मनोज जैन 'मधुर'

संस्थापक एवं संपादक

प्रीति समकित सुराना

वेब साइट

www.antrashabdshakti.com

ईमेल

antrashabdshakti@gmail.com

फेसबुक पेज

https://www.facebook.com/www.antrashabdshakti/

फेसबुक समूह

https://www.facebook.com/groups/989086901140447/

अनुक्रमणिका

संपादकीय
प्रीति समकित सुराना 4

गीत-नवगीत
मनोज जैन 'मधुर' 6
कल्पना 'मनोरमा' 7
सत्यप्रसन्न 8
ब्रजेश शर्मा 'विफल' 9

ग़ज़ल
लक्ष्मी शंकर बाजपेयी 10
दीपशिखा सागर 11
राजेश श्रीवास्तव 'प्रखर' 12

सावन शुक्ला 13

कविता
भारती वर्मा बौड़ाई 14
नीरजा मेहता 15
प्रदीप सोनी 'शून्य' 16
कीर्ति वर्मा 17

हायकू
कंचन अपराजिता 18
आभा चन्द्रा 19

पिरामिड
विभा रानी श्रीवास्तव 20
हिमकर श्याम 21

दोहे
अमित आनंद 22

रविन्द्र परमार 23

मुक्तक
विनोद तिवारी 'मानस' 24

अलका चौधरी 'अनमोल' 25

माहिया

गुंजन श्रीवास्तव 26

आलेख

आशुतोष राणा 27

संस्मरण

मदन मोहन 'समर' 31
मीनाक्षी सुकुमारन 33

लघुकथा
केदार नाथ 'शब्द मसीहा' 34
प्रेरणा गुप्ता 35

डॉ सुषमा गुप्ता 37

कहानी
ऋता शेखर 'मधु' 38

अर्चना मिश्रा 42
राज बोहरे 47

साक्षात्कार -

माहेश्वर तिवारी 56

पुस्तक समीक्षा

संजय शुक्ल 67-71

संपादकीय

"क्या विचारों को अभिव्यक्ति की आवश्यकता है",....??

'अंतरा-शब्दशक्ति' हिंदी सेवा के उद्देश्य से प्रारंभ की जा रही एक मासिक पत्रिका, जिसका शुभारंभ करते हु ए तथा पहला अंक संपादित करते हु ए बहु तसे विचार मन मे उठ रहे हैं। एक व्यक्तिगत सोच का समष्टिगत परिणाम जानने का प्रयास करते हु ए अपनी बात एक लेख के माध्यम से,....

हर रोज एक नया विचार मेरे मन की देहरी पर राह तकता है
कोई सोचे,कोई समझे,कोई सुने,कोई गुने,..उसे ये लगता है
मैं चाहती हू ं हर बार कि लाकर रख दू ं सबके सामने उसको,
क्या आप सहमत हैं "विचारों को अभिव्यक्ति की आवश्यकता है",....???

जबसे होश सम्भाला है तब से एक आदत सी बन गई है अपने मन की डायरी के पन्नों पर लिखती रही हू ं मैं अपनी सोच, अपना नजरिया, अपने अनुभव,अपनी अच्छी-बुरी यादें अपनी गल्तियां,...सब कुछ,.. क्यूंकि शायद आत्मविश्वास की कमी के कारण मुझे अभिव्यक्त करने में हमेशा संकोच रहा,.. यही वो वजह भी है कि मैं कुछ भी कहने के पहले कहती हू ं,.. "मुझे लगता है",... या,.. "मैं ऐसा सोचती हूं",.... या,.. "शायद",... या,.. "अकसर"....क्योंकि मैं अपना नजरिया किसी पर थोपने या लादने की पक्षधर नही हू ं,...

जब से सोशल मीडिया से जुड़ी हू ं मैंने एक बात महसूस की है सुबह उठते ही सुप्रभात के साथ सुविचारों का सिलसिला शुरु होता है साथ ही शुरु होता है कुछ खबरों और कुछ चुटकुलों के साथ कुछ गन्दे और भद्दे संवादों का सिलसिला,..अब ये हमपर निर्भर करता है कि हम इनमें से क्या ग्रहण करते हैं,... किसे अपनाते हैं, किस पर हंसते हैं किस पर दुखी होते हैं किससे सहमत होते हैं किससे असहमत होते हैं किसे प्रचारित करते हैं किसे प्रसारित करते हैं किसे मिटाते हैं किसे आत्मसात करते हैं,..

हर सुबह कोई न कोई नया मुद्दा दे जाती है विचारों को,..आज एक मित्र ने कहा,.. तुम अपने विचार सोशल मिडिया में क्यों नहीं लिखती,.. तो आज मैंने सोचा सही तो है अभिव्यक्ति से विचारधारा बनेगी तब लोगों की पसंद नापसंद से मनोबल तो बढ़ता ही है बल्कि सहमति और असहमति विचारधारा को दिशा देती है ,..एक सकारात्मक और प्रेरक सोच को सही तरीके से लोगों के सामने रखा जाए तो सकारात्मक परिवर्तन भी संभव है,...और कभी-कभी छोटी सी बात के बदलते ही नए विचारों का सृजन हो जाता है और कई बार वैचारिक क्रांति भी जन्म लेती है,..

मेरी सोच हमेशा से यही कहती है की विचारों को प्रभावित करते हैं "तन" "मन" "अन्न" "धन" और "जन",.... अब सवाल ये है कि मुझे ऐसा क्यों लगता है,..??तो चलिए एक क्रम से बताती हू ं की मैं ऐसा क्यों सोचती हू ं ,...पर एक बात बताती चलू ं की मेरा मानना ये है कि कोई भी कहावत या मुहावरा

बहु तसी कसौटियों पर कसे जाने के बाद ही बनते है,..
सबसे पहले बात करें 'तन' की तो पुरानी कहावत है "पहला सुख निरोगी काया".... पहले के लोग योग-ध्यान-साधना और व्यवस्थित दिनचर्या का पालन करते थे,... चित्त शांत और व्यवस्थित रहता था प्रेम,गुस्सा,विरोध, आक्रोश सभी भावों को व्यक्त करने के लिए एक व्यवस्थित तरीका होता था,..आज भागमभाग की जीवनशैली में सब कुछ अनियमित अव्यवस्थित होता जा रहा जिसका सबसे बड़ा परिणाम है "तनाव" और तनाव के कारण बनती हैं विकृत मानसिकता,... कई मत और मतभेद,.... जो पूरी तरह प्रभावित करते है विचारों को,..
फिर आता है मन,..क्योंकि कहते हैं "मन के हारे हार है,मन के जीते जीत" मन संतुलित हो तो सकारात्मक विचार जन्म लेते हैं अन्यथा नकारात्मक विचार,...

कहा जाता है "जैसा खाए अन्न वैसा होए मन" पुराने ज़माने के लोग जो शुद्ध खाते थे तो विचारों पर तटस्थता भी कायम रहती थी विचारो की कोमलता या कठोरता कायम रहती थी,...आज हम मिलावट और रसायनों से पनपा हु आअन्न खाते और आज हम वैसा ही मिलावटी व्यव्हार भी करते हैं,..जिसे कह सकते हैं "मुंह देखी बात करना",..क्योंकि हम आज ऐसी ही जीवनशैली जी रहे हैं जहाँ सब कुछ सिर्फ दिखावा है,..न हम ठीक से हंस पाते न रो पाते,..

धन की भूमिका तो और भी रोचक है क्योंकि "बाप बड़ा न भैय्या,सबसे बड़ा रुपैय्या" ऐसी दशा में विचारों की कीमत जेब के वजन के हिसाब से लगाई जाती है,.. यहां ये कह सकती हूँ की विचारों का मोल आर्थिक स्तर पर निर्भर करता है क्योंकि छोटे लोगों के अच्छे विचारों का भी कोई बाज़ार मूल्य नहीं जबकि बड़े लोगों की जीवन शैली ही विचारधारा बन जाती है,...
अब बचा जन यानि लोग तो आज का "सबसे बड़ा रोग,क्या कहेंगे लोग" जो लोगों को सोचने पर मजबूर तो करता है पर कहने या करने से रोकता है,...आसपास के जन समुदाय विचारों पर अवश्यमेव असर डालते हैं,..क्योंकि "संगत का असर" पड़ता ही है,...

इस तरह मैं मानती हूं रोज मेरे विचारों को प्रभावित करने वाले कारकों यानि तन,मन,अन्न,धन और जन के संपर्क में रोज मेरे विचारों को एक नई सोच औए नजरिया मिलता है,....मुझे लगता है ऐसे में "अभिव्यक्ति" एक सशक्त माध्यम है जिससे शायद एक दिन वाकई किसी वैचारिक क्रांति की प्रणेता बन सकू,....
क्या आप मुझसे सहमत हैं
"विचारों को अभिव्यक्ति की आवश्यकता है",....???
इसी प्रश्न के उत्तर के साथ इस पत्रिका और हमारे इस प्रयास को आपका स्नेह और आशीर्वाद मिलेगा मन मे यही आस भी है और विश्वास भी,...।

प्रीति समकित सुराना

वारासिवनी (मप्र)

नवगीत

अधुना व्यापारी

दुनिया तुझको मीठी लगती
मुझे लगती खारी।
सुन, रे संसारी।
●
झूठी सच्ची बातें चखकर
पाँच गाँठ हल्दी की रखकर
छलछंदी खुद ही
बन बैठा
लाला - पंसारी!"
सुन ,रे संसारी।
●
लोक लुभावन वादों वाला
तन का उजला मन का काला
खुल कर दाढ़ी
वाला बेचे
अपनी मक्कारी
सुन,रे संसारी।
●
पर्दा झीना हु आदर्प का
अजब घरोबा नकुल सर्प का
जन गण मन के
सिर पर रोपें
मिलकर लाचारी
सुन , रे संसारी।
●

पुण्य अनन्त हु आ

कथ्य यहाँ का।
शिल्प वहां का।
दर्शन ठूँसा,
कहाँ कहाँ का।

दो-कोंड़ी की
कविता लिखकर
तुक्कड़
पंत हु आ।
●
साँठ गाँठ
तिकड़म से यारी
खुद को कहता
है अवतारी

लूट , सती की
लज्जा चुरकर
यूँ जय
वन्त हु आ।
●
इधर उधर का
लूटा पाटा.
इसको छाँटा
उसको काटा

दान लिखा कर
मंदिर जी में
डाकू संत
हु आ।

पुण्य अंनत
हु आ।

●

मनोज जैन 'मधुर्'

भोपाल (मधुर)

नवगीत

मत सोचो बादल आयेंगे '

आसमान तक पहुँच चुका है
धरती का कोहराम
सागर के कटु खारेपन ने
जीवन किया हराम

जैसे-तैसे आज़ बिताकर
कल सब दुखड़ा ही पायेंगे
मत सोचो बादल आयेंगे ।

तोते पिंजड़े छोड़ उड़ेंगे
घर में होंगे बाज
हंस कैद में बँध तड़पेगें
बगुले भोगें राज़

कोयल के स्वर कुंठित होंगे
काग सुहानी धुन गायेँगे
मत सोचो बादल आयेंगे ।

छाँव गाँव की धूप वरेगी
सूखेँगे वट-नीम
सड़कें पहुँचेँगी जंगल तक
होंगे गिद्ध यतीम

वसुधा के गर्वीले सपने
छितरा कर मुँह की खायेंगे
मत सोचो बादल आयेंगे !

एक चिन्मय भोर

ढूँढ लायें क्यारियों से
एक चिन्मय भोर
फ़िर बाँटें उजाले ॥

चिमनियों ने
क्षितिज से शबनम
चुराई, रात रोई ।

बुलबुलों ने
कण्ठ में सरगम
छिपाई, बात खोई ।

माँग ले व्यापारियों से
एक विनिमय भोर
फ़िर बाँटें उजाले ॥

सीपियों के
पेट खारा जल,
बने मोती कहाँ से ।

ज्ञान की जलती
अँगीठी ,पर
सिंके रोटी कहाँ से

विहग कलरव में मचलती
एक तन्मय भोर
लें , बाँटें उजाले ॥

कल्पना 'मनोरमा

गीत

पावस का घट रीत गया है

मन का चतुर्मास प्यासा है
पावस का घट रीत गया है।

बेसुध होकर बूंदे थिरकीं
हरियाली ने छेड़ा सरगम।
सीले सीले दिन अलसाये
जागी सारी रातें पुरनम।
अमराई में आ कोयल ने
गाया कोई गीत नया है ।
पावस का घट रीत गया है।

लगा दिये अंबर ने कितने
वसुधा पर सावन के मेले।
लेकिन यादों की पगडंडी,
पर केवल हम निपट अकेले।
हार गया दर्पण का पारा
बिंब तुम्हारा जीत गया है।
पावस का घट रीत गया है।

पत्थर की छाती पर चढ़ कर
हरी दूब लिख रही कथाएं।
कौन भला बांचेगा लेकिन
अपनी पीड़ा और व्यथाएं।
फला नहीं तप,और एक युग
लगता जैसे बीत गया है।
पावस का घट रीत गया है।

ख्यालों में तुम

एहसासों की खुशबू थी,
या खुशबू का एहसास,
ख्यालों में तुम रहे रात भर
साजन मेरे पास।

पता नहीं क्या अमलतास से
बतिया कर जुन्हाई,
खिड़की से आ मेरे तन के
हर रेशे पर छाई।
महक गया मेरी यादों में
वो पहला मधुमास।
ख्यालों में तुम..........।

दूर कहीं पर कूक रही थी
कोयल अमराई में,
टूट रहे यादों के पर्वत
थे उस तन्हाई में।
चंदन वन से होकर आया
था शायद वातास।
ख्यालों में तुम.........।

पलकों के आंगन में उतरी
नहीं नींद की डोली,
ऊषा ने प्राची में रच दी
एक नई रंगोली।
किंतु प्रेम की सदा सुवासित
बाकी अब भी प्यास।
ख्यालों में तुम.........।

सत्यप्रसन्न

कोरबा (छ.ग.)

गीत

पहली नज़र में

पहली नज़र में देखा जब से,
कान्हा तू मन मीत हु आहै ।।
तेरी बंसी की धुन सुन के
रोम रोम संगीत हु आहै ।।
तेरी सुधियों की हर खुशबू
चन्दन सी मन में रहती है ,
उपालम्भ अपनी सखियों के,
क्या क्या ये राधा सहती है,
तू छलिया है तू निर्मोही ,
हर गली ये ब्रज की कहती है
प्रीत में यूँ बिसरा देना क्यूँ,
तेरे जग की रीत हु आहै ।।
तेरी बंसी की धुन सुनके...
जब जब ख़ुद को सोचूँ मुझको,
बस सूरत तेरी नज़र आये,
मेरे अंतर की पीड़ा को,
तेरे बिन कहाँ सबर आये,
साँझ सवेरे राह देखती,
कि तेरी कोई खबर आये,
मुझको तो सारा जग मोहन
तेरी मेरी प्रीत हु आहै ।।
तेरी बंसी की धुन सुनके....

यादों का मंजर

बिन तुम्हारे यादों का मन्ज़र हर इक वीरान है,
रास्ते सब खोये खोये हर गली सुनसान है ।।
आज सब बातें जुदा न जीत है न हार है,
नेह की कितनी अनूठी सी वो इक रसधार है,
हर तरफ बिखरा हु आयादों हरसिंगार है,
प्रेम मीरा और मोहन की भी तो पहचान है ।।
बिन तुम्हारे यादों का मन्ज़र हर इक वीरान है ।।
याद आता है मुझे वो छत पे आ जाना तेरा,
दूर से ही देखना और यूँ ही शरमाना तेरा,
और साये की तरह मुझमे समा जाना तेरा ,
नाम ही तेरा मेरी जाँ खुशियों का उन्वान है ।।
रास्ते सब खोये खोये हर गली सुनसान है ।।
स्वप्न चाँदनी खुशबु बादल और तन्हा सी रातों में,
डूब ही जाता था मैं अक्सर झील सी गहरी आँखों में,
कटता था सब वक़्त उन दिनों बस बातों ही बातों में ,
दर्द से मेरे यहाँ तो जानाँ शख़्स हर अंजान है ।।
लौट कर आते हैं कब गुज़रे हु ए लम्हात वो,
बेर इमली कंचे लट्टू क्या 2 तेरी सौगात वो,
सीली हु ईबातें कभी भीगे हु ए जज़्बात वो ,
ओ प्रिये !! फिर आज तेरी यादों को आव्हान है ।।
बिन तुम्हारे यादों का मन्ज़र हर इक वीरान है ।।

ब्रजेश शर्मा विफ़ल

झांसी (उप्र)

ग़ज़ल

ग़ज़ल 1

सफ़र मेरा कभी तनहा कहाँ है
तेरी यादों का पूरा कारवां है

सफाई लाख दो,लेकिन बताओ
नहीं है आग,तो फिर क्यों धुआं है

बताऊँ तुमको कैसा घर है मेरा
ज़मीँ बिस्तर तो चादर आसमां है

कोई आवाज़ उठ पाए तो कैसे
ज़ुबाँ रखकर बशर जब बेजुबाँ है

वो देखे कब भला मुरझाई कलियाँ
बहु तमशरूफ़ अपना बागबाँ है

नहीं मकतब कोई,ये ज़िंदगी है
यहाँ हर पल नया इक इम्तिहाँ है

ग़ज़ल 2

यादों के सौ फूल खिलाए बैठे हैं
पतझर को मधुमास बनाए बैठे हैं

ध्यान हटाकर ऊँचे पेड़ों से,देखो
लाखों पौधे क्यों कुम्हलाए बैठे हैं

अरी हु कूमतज़रा मुफ़लिसों को बख्शो
हम पहले से लुटे लुटाऐ बैठे हैं

चाँद भी कुछ धुँधला धुँधला है आज की शब
तारे भी कुछ कुछ अलसाए बैठे हैं

बदल गया है लहजा,रुतबा मिलते ही
दैखो अब कैसे इतराए बैठे हैं

वही राहबर बाँट रहे फिर ख़्वाब नए
जो लोगों के ख्वाब चुराए बैठे हैं

बड़े इँक़लाबी है अपने दानिशवर
प्यालोँ मे तूफान उठाए बैठे हैं

चालू रखनी है दूकान सियासत की
इसीलिए मुद्दे उलझाए बैठे हैं

किसी तरह जल्दी जल्दी सब माल बिके
सब अदीब दूकान सजाए बैठे हैं

लक्ष्मीशंकर बाजपेयी

दिल्ली

ग़ज़ल

ग़ज़ल 1

रहबर मिला न साथ कोई हमनवा गया,
हम चल पड़े उधर को जिधर रास्ता गया।

किरदार में कुछ ऐसे वो अपने समा गया,
जोकर था जाते जाते भी सबको हँसा गया।

तन मन महक रहा है चहकती है आरज़ू,
ये कौन मेरी रूह को छूकर चला गया।

रुखसत किया उसे औ पलट के भी आ गए,
दिल पीछे पीछे उसके ही बस भागता गया।

घर से चला था ढूंढने उल्फ़त की रागिनी,
धोखे से इस सुकूत के सहरा में आ गया।

उसको ख़ुदाया बख्शना महफ़िल की रौनकें,
तन्हा सिसकने की जो मुझे दे सज़ा गया।

महताब, रंग, ज़ुल्फ़,धनक खुश्बुओअदा,
है नूर कौनसा जो ग़ज़ल में न आ गया।

दो दिन की ज़िंदगी है ज़रा मुस्कुरा भी ले,
झरता हुआ गुलाब 'शिखा' ये सिखा गया।

ग़ज़ल 2

तकल्लुफ़ात का अब तक हिजाब बाकी है,
किसी की सिम्त से आना जवाब बाकी है।

तेरे जमाल से रोशन हैं आज भी ग़ज़लें
तेरे खयाल का अब भी शबाब बाकी है।

भला मैं छोड़ दूं उम्मीद कैसे जीने की,
चिटक गया है पर आंखों में ख्वाब बाकी है।

अभी तो रक्खा है पहले पड़ाव पर् ही कदम,
अभी मिला है क़मर आफताब बाकी है।

चले कहाँ हो गिरा वर्क तर्क ए उल्फत की,
अभी तो फैसला मेरा जनाब बाकी है।

हैं आँधियों से बगावत बड़े दरख्तों की,
अभी तो तिनकों का भी इन्क़िलाब बाकी है।

चमन तो कर दिया गुलज़ार मैंने फूलों से,
खिलाना पत्थरों में भी गुलाब बाकी है।

थपकता ख़्वाब में अब भी है हाथ माँ का 'शिखा'
खयाल में भी पिता का रुआब बाकी है।

दीपशिखा सागर

वारासिवनी

ग़ज़ल

ग़ज़ल 1

हक मुहब्बत का' शबे रोज अदा करते हैं
खुश रहे तू भी सदा रब से दुआ करते हैं

ये रफ़ाक़त ये शराफत भी दिखाओ मत यूँ
अपना' बनके ही यहाँ लोग छला करते हैं

जख़्म गहरे थे' दिए दिल पे' चुभो के खंजर
सूख न जाएँ' कहीं फिर से हरा करते हैं

दर्द का आसमाँ' ही बन गया कागज कोरा
अश्क को स्याही' बना लफ्ज लिखा करते हैं

दौर-ए-गुरवत में ही औकात दिखाने वालो
हम दिया हैं वो' जो' आँधी में' जला करते हैं

खूबसूरत ये मिला शोख हुनर लेखन का
अब तो' इसके ही प्रखर जाम पिया करते हैं

ग़ज़ल 2

भुलाने में जिनको जमाने लगे हैं
वही रूबरू आज आने लगे हैं

झलक को तरसते थे उनकी कभी हम
उन्हें आज हम भी लुभाने लगे हैं

किनारे से मिलने चला हूँ लहर बन
कि साहिल हमे अब बुलाने लगे हैं

दरों पर बहारों ने दी आज दस्तक
खिजाओं के' दिन दूर जाने लगे हैं

मुहब्बत की दुनियाँ बड़ी खूबसूरत
वफ़ा के ये' पल झिलमिलाने लगे हैं

ढली रात काली सहर हो रही है
परिंदे भी अब चहचहाने लगे हैं

ख़ुशी के ये पल डाल अशआर में हम
ग़ज़ल - ए- मुहब्बत सुनाने लगे हैं

प्रखर ख्वाब है या ये' कोई हकीकत
फ़लक़ पर हमारे ठिकाने लगे हैं

राजेश श्रीवास्तव 'प्रखर'

कटनी (मप्र)

ग़ज़ल

ग़ज़ल 1

जिद पे उतरा है जो सूरज के जला लेगा बदन ।।

शाम को देखना दरिया में बुझा लेगा बदन ।।

मैंने वो इल्म सिखाया है उसे ख़्वाबों का ।।

अब तस्सवुर की वो मिट्टी से बना लेगा बदन ।।

जिस तरह से तू निशाने पे मेरे आया था ।।

मुझको खटका तो हुआ था तू हटा लेगा बदन ।।

मुतमईन हूँ मैं मेरी ज़ात से लेकिन फिर भी ।।

मुतमईन इतना नहीं कोई चुरा लेगा बदन ।।

सुन मेरे अहले जुनूँ तू अभी चुपचाप ही रह ।।

फिर किसी और ही मुश्किल में फंसा लेगा बदन ।।

आजतक जिसने उसे देखा जेहन देखा है ।।

देखना ये है कि किस दिन वो निकालेगा बदन ।।

ग़ज़ल 2

डूब मरने की हुई बात,, जवानी के लिए..

मयकदा छोड़ के आना पड़ा पानी के लिए..

मारका हिफ्ज़ का रखने की,,जरुरत क्या है ..

मेरा अहसास ही काफी है,,निशानी के लिए..

मुझको ढलना ही पड़ा उसमें,, मिटा कर खुद को..

उसका किरदार जरूरी था,, कहानी के लिए..

दफअतन टूट के निकला था किसी लहज़े से..

अब तअय्युन है परेशान मआनी के लिए..

उसकी आँखों में मैं इस वक्त,, न दिख पाऊंगा..

उसने रखा है मुझे,, दर्द बयानी के लिए..

ये इरादा भी है,, सौदा भी है, ख्वाहिश भी है..

कोई तो रात मिले दुश्मने जानी के लिए..

सावन शुक्ला

अहमदाबाद

कविता

मधुमास

जीवन का मधुमास प्रिय तुम आ जाओ।
विरहाग्नि में तपे हु ए दिन
चंदा भरी चांदनी रातें
स्मृतियों में हूँ तुम्हें बसाए
करती हूँ बस तुमसे बातें
व्यवधानों का अंबार संभालने आ जाओ।
अब संदेस न भाते मन को
कैसे कब तक धीर धरूँ मैं
जगती के अनगिन तानों की
बोलो कब तक पीर सहूँ मैं
जीवन लगता भार साथ बन आ जाओ।
अपनेपन की बात करें सब
लेकिन अपना लगे कोई न
एक तुम्हारे न होने से
जीवन सागर पार लगे न
जीना किस विध आकर यही बता जाओ।
जीवन का मधुमास प्रिय तुम आ जाओ।

मेरे देश ने ली अँगड़ाई है

कुछ ऐसी चली पुरवाई है
मेरे देश ने ली अँगड़ाई है।

लुटे बहु तओरों के हाथों
अब लूटने को तैयार नहीं
अब स्वयं लिखेंगे परिभाषाएँ
गूंजेंगे अपने नवगान यहीं
ऐसी हमने मिलकर शपथ उठाई है
मेरे देश ने ली अँगड़ाई है

कुछ राह नई कुछ निर्णय नए
बस मान उन्हें अब चलना है
नहीं सुननी बातें ओरों की
संकल्प लिया वो करना है
नया सवेरा आने की सुखद वेला आई है
मेरे देश ने ली अँगड़ाई है।

थोड़ा संघर्ष करें हम भी
वो गाथाएँ बन जाएंगी
बन नई रोशनी आगामी
पीढ़ियों को राह दिखाएंगी
संदेश नया देने की अब सब पर बन आई है
मेरे देश ने ली अँगड़ाई है।

ये समय है सबके करने का
उठें, चलें और करें सभी
भावी पीढ़ियों के सम्मुख
झुकना न पड़े हमें कभी
देशभक्ति की आग दिलों में ऐसी लगाई है
मेरे देश ने ली अँगड़ाई है।

कुछ ऐसी चली पुरवाई है
मेरे देश ने ली अँगड़ाई है।

डॉ. भारती वर्मा बौड़ाई
देहरादून

कविता

भोर

टूटी तन्द्रा मन जाग उठा
उपवन ऐसा था महक रहा।

मैं छोड़ सभी कुछ दौड़ पड़ी
रह गयी अचम्भित खड़ी खड़ी।

पादप पर विकसित रक्त पुष्प
खिल गए ज़मीं पर पात ख़ुश्क।

पत्तों से बहती तुषार बूँद
कर रही स्पर्श मैं आँख मूँद।

नन्हे पक्षी कर रहे किलोल
चल रही पवन खिल रहा भोर।

बैठे तरु पर खग, कर रहे पुकार
मन पुलक रहा था बार-बार।

कर रही आनन्दित भोर मुझे
थी सुखद अनुभूति मिली मुझे।

काँटे

संजो कर रखे हैं
मैने वो काँटे
जो मिले हैं
विरासत में तुमसे,
तलाशती रही प्यार
खोजती रही
तुम्हारे दिल में एक कोना
जो देता मुझे
फूलों सा नर्म एहसास
किन्तु रीतेपन ने
नहीं छोड़ा साथ,
ज़िन्दगी की टहनी में
खुशी के
अपनेपन के
स्नेह के
सारे फूल झड़ गए
और विरासत में आई
ज़िन्दगी की कांटों
भरी टहनी।

नीरजा मेहता, गाज़ियाबाद

कविता

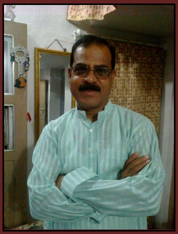

हासिल क्या हो ...

निगाहें मिलाकर ही बात कहिए।
दिन को दिन रात को रात कहिए।

कितने जियेंगे झूठ के साये में ,
जैसे हैं सामने हालात कहिए।

दूसरों से मिला , उस पे न इतरा,
ये है मेरा सृजन बेबाक कहिए ।

हासिल क्या हो पायेगा बैठ कर,
अपनी है कमजोरी आप कहिए।

उजाले अंधेरों को ' शून्य ' करेंगे,
चेतना हो सामने सुप्रभात कहिए।

भूख

जितनी भूख
उतनी कहाँ रोटियाँ हैं।
अभाव से जूझती
भीड़ में बेटीयाँ हैं।
वस्त्र नहीं ,
आवश्यक तन ढकने।
आँखें जागी हैं
सो गए हैं सपने ।
देख देख जग हँसता है।
जाने कौन ! विवशता है।

अपनेपन के गीत
लय है परायी सी।
आँसू आँसू मौसम
दुख बदली छायी सी।
समाधान के नाम
पैबंद स्वार्थ के।
खुशियों की साँसों पर
अनुबंध शर्त के।
क्यों यह रूप निखरता है?
जाने कौन ! विवशता है।

हृदय वेदना
अधरों पर मुस्कान।
गैरों को खुशियाँ
स्वयं ज्यों श्मशान।
घर पर लगी
अभावों की आग ।
बच्चों की खातिर
बदले रोज सुहाग।
जीवन बस यूँ ही ढलता है।
जाने कौन ! विवशता है

प्रदीप सोनी 'शून्य '

बेगमगंज (रायसेन)

कविता

पंछी

स्वारथ में अंधी भई
जा मानव की जात ।
कंक्रीट के हो गये
छोड़ प्रक्रति का साथ ।।
कानन का दोहन किया
पंछी कहाँ रहे ??
मोबाइल टावर लगे
बाकी बचे भी मरे ।।
डाल रसायन खेतों में
दाने विष से भरे!!!!!
चुग चुग के दाने वही
पंछी सारे मरे !!!!!!!
नरवाई जला कर के
काले खेत करे !!!!
दाना एक न तब बचा
कीट पतंगें मरे !!!!
अपने हक को तुम लड़ो
पंछी किसे सुनायें ?
विलुप्त सारे हो रहे
आओ इन्हें बचाये ।

जीत _हार

जीवन हैं एक खेल तमाशा ,
कही हैं आशा कहीँ निराशा।।
कभी हम नट नटनी बन जाते ,
संतुलन का खेल दिखाते
नाते रिश्ते या हो रसोई
संतुलन से ही ये बच पाते ।
जिसने न संतुलन बनाया
रस्सी पर से वह गिर जाता ।
जीवन हैं एक खेल तमाशा
कहीँ हैं आशा कहीँ निराशा ।।
चाहें सोने सी फसलें सब ,
जो बोया हो बबूल का काँटा ।
हार जीत के भँवर में डूबे
कोई इससे उबर न पाता ।
हम सब हैं शतरंज के मोहरे ,
ईश्वर फेंक रहा है पाँसा !!!!
जीवन हैं इक खेल तमाशा ।।

कीर्ति प्रदीप वर्मा

हौशंगाबाद

हायकू

1
बरसे मेघ--
गोरी के कुंतल से
टपकी बूँदे
2
नीली छतरी
भी भींगे बच्चों संग--
हरित धरा
3
होली के दिन
रंग पुते चेहरे--
बहु रूपिया
4
सुर्ख गुलाब
उसके हाथो मे थे--
झुके नयन
5
तिरंगा हाथ--
बँटती जलेबी पे
लुझके बच्चे
6
मेघ गर्जन
माता के आँचल से
चिपके बच्चे ।

7
है शुभदृष्टि--
शिव किये श्रृंगार
सम्मुख गौरी ।
8
मेड़ से बँटे
दो फसल खेत मे
देश की सीमा ।
9
बस्ते का बोझ
दूसरो का ढ़ोते हैं-
श्रमिक बच्चे
10
अपराजिता
लटे बाँस लिपटी-
ईद मिलन
11
अमा की रात--
चाँद ने पहनी है
काली पोशाक
12
बैठे बुजुर्ग-
पोटली ले दवा की
सूना मकान

कंचन अपराजिता

झारखंड (बोकारो)

हायकू

1.

आया बसंत~
ओढ़ पीली चुनर
बाज़ार चली

2.
तपती धरा~
वो घसीटता चला
टूटी चप्पल

3.
सूर्य उदय
लाली आसमान पे~
पंछी चहके

4.
बेला महका~
शर्म से झुक गयी
प्यारी अंखिया

5.
बूंदे ठुमकें
बिजुरिया हु लसे
गाये मल्हार

6.
कहां मिलेगा ?
अगर टूट गया
जीवन मूल्य

7.
आया बसंत~
ओढ़ पीली चुनर
बाज़ार चली

8.
तपती धरा~
वो घसीटता चला
टूटी चप्पल

9.
सूर्य उदय
लाली आसमान पे~
पंछी चहके

10.
बेला महका~
शर्म से झुक गयी
प्यारी अंखिया

11.
धूप के हाथ
क्रोधित तन मन
दुबकी हवा

12.
दिन अलाव
सुलगती सड़कें
हवा है गुम

आभा चन्द्रा
लखनऊ

वर्ण पिरामिड

शीर्षक = ईंट

स्त्री
अंस्य
अंहद
व्यंग,स्वप्न
खफ़ा,विज्ञान
उड़ान, अदान
ईंट ईंट सजाती{01}

हाँ !
जान
अंशभू
त्याग स्वार्थ
अँखमूदन
नीड़ सज जाता
ईंट की करवट{02}

मिट्टी / माटी / मृदा

स
शौर्य
अहर्य
ना मात्सर्य
पाता एश्वर्य
नीलकंठ बन
उदर्य मिट्टी-धैर्य{01}

ण
स्तर्य
हो स्मर्य
चैन देता
रहस्य रंगी
मिट्टी ना बदले
रवि जुगनू संगी{02.}

नमक / नून

क्यों !
पीन
स्व लीन
स्वार्थाधीन
क्रंदन बीन
नादानी जकड़ी
नून तेल लकड़ी{01.}

त्यूँ
त्याज्य
प्रलीन
जाल फँसी
चुराए हँसी
अक्स पै आँसू पी
नमक कमी लगी{02.}

विभा श्रीवास्तव,पटना

वर्ण पिरामिड

1.

है
ऋतु
अनूठी
बरसात
झूमते पात
पुलकित गात
बरखा की बारात

2.

है
घन
गर्जत
धड़ धड़
बूँदें नाचती
बसुधा झूमती
चहुँ ओर आनन्द

3.

रे
मेघ
निर्मोही
कहाँ है तू
धरा पियराय
सूरज झूलसाए
कैसे जान बचाए

4.

ये
नीर
अमूल्य
उपयोगी
करें संचय
इतना रखें याद
बूंदें न हों बर्बाद

5.

है
लुप्त
सलिल
तप्त धरा
दुःखी किसान
सारे हलकान
चेत अरे इन्सान

6.

ये
जग
अधीर
सूखे क्षीर
कहाँ है नीर
संकट गम्भीर
हु ईघनेरी पीर

--हिमकर श्याम
राँची (झारखंड)

दोहे

1.
किस्मत रहती है अभी, मुश्किल में भी साथ।
मेरे सिर पर है सदा, मेरी माँ का हाथ।।

2.
सुख के सागर का तुम्हें, बतलाता हूँ राज।
चरण पकड़ के देखना, अपनी माँ के आज।।

3.
चरणों में मैं हूँ पड़ा, माँगूँ नहि धन-धान।
मैं मूरख अंजान हूँ, गुरुवर देना ज्ञान।।

4.
देख कला तेरी प्रभू, हो जाता हूँ दंग।
तेरा गूढ़ा रंग है, मेरा फीका रंग।।

5.
दुनियाँ तेरी भी वही, जिसमें मेरा वास।
मैं समझूँ घर साजना, पर तूँ कारावास।।

6.
दुनियाँ की तुम राह में, मत बनना रे काँट।
कारण बन मुस्कान का, सबको खुशियाँ बाँट।।

7.
जितने तेरे रंग हैं, उतने मेरे रंग।
रब जो तेरे संग है, वो ही मेरे संग।।

8.
तन के सारे दर्द का, मन ही है ठहराव।
पीड़ा देते हैं सदा, मन के गहरे घाव।।

9.
करखाने जब थे नहीं, तब बहता था क्षीर।
कितना गंदा हो गया, अब गंगा का नीर।।

10.
पत्थर के हम हो गए, पत्थर की छत छाँव।
घास-फूस की छत जहाँ, प्यार बसे उस गाँव।।

11.
जैसा था वैसा अभी, सूरज का आकाश।
अपनी धरती का किया, हमने सत्यानाश।।

-आनन्द"अमित" गाज़ीपुर (उप्र)

दोहे

1.

ऐसी करनी कीजिये , ऐसा हो आचार ।

आप चले जायें मगर, जिन्दा रहे विचार ।।

2.

दीवारें लिखने लगीं , जब घर का भूगोल ।

धीरे से खुलने लगी , अपनेपन की पोल ।।

3.

कितने बीजों ने दिया,जब अपना बलिदान ।

तब जाकर पैदा हु आ, बरगद एक महान ।।

4.

जनपथ हो या राजपथ, दफ्तर या दरबार ।

जनगण ही रोंदा गया,बार बार हर बार ।।

5.

बूँदें जब करने लगीं , सागर का अभिषेक ।

उमडा विरह प्रतीति ले,नदियों का अतिरेक ।।

6.

आँखें अपनी बन्द कर, कैसे बनता बुद्ध ।

जीवन भर चलता रहा भीतर बाहर युद्ध ।।

7.

एक व्यवस्था के लिये, कितने बनते धर्म ।

पर कोई समझा कहाँ. मानवता का मर्म ।।

8.

भेदभाव के लिख रहे , सबके सब आलेख ।

बचे न अलगू चौधरी,रहे न जुम्मन शेख ।।

9.

गुमसुम बैठे फर्श पर, सत्य और ईमान ।

और सुशोभित मंच पर,बिका हु आसामान।।

10.

तोड़ रहे कानून सब , जिनके सत्ता हाथ ।

दुर्जनता है कार में , सज्जनता फुटपाथ ।।

11.

सत्ता के सानिध्य में , बाजें फूटे ढोल ।।

नाकारा अवशेष भी , बिकें रत्न के मोल ।।

रविन्द्र परमार

मुक्तक

1

अब आदमी ही आदमी से जल रहा संसार में।

कश्ती डुबाने पर तुला है आज क्यों मझधार में।

अन्जान बनकर फिर रहा तू क्यों जमाने में बता;

जीना सुकूं से चाहे तो ला सादगी व्यवहार में।

2.

हर बशर यूँ तो जहाँ में मुश्किलों की ज़द में है।

ले लिया सन्यास फिर भी ख्वाहिशों की ज़द में' है।

चैन अब मिलता नहीं दैरो-हरम में दोस्तो;

इसलिए अब जीस्त अपनी मयकदों की जद में' है।

3.

सितम देखो हवा इस पश्चिमी का।

जनाज़ा उठ गया है सादगी का।।

हवस का काफ़िला है साथ उसके;

भरम तुझको हुआ क्यों आशिकी का।

4.

कभी चढ़ाव तो कभी उतार है ये जिंदगी।

गुलों की वादियाँ कभी तो खार है ये जिंदगी।

करो हज़ार गलतियाँ मगर कहीं रुको नहीं;

सुधार माँगती हुई पुकार है ये जिंदगी।

5.

कैसा था अब क्या ज़माना हो गया।

कितना मुश्किल मुस्कुराना हो गया।।

अब वफ़ा मिलती कहाँ इंसान में.

खेल कोई दिल लगाना हो गया।

6.

ख्वाब में आये वो जब से शब सुहानी हो गईं।

खार वाली झाड़ियाँ भी रातरानी हो गईं।

आ रहे झोके हवा के छू के जब उनका बदन;

खिड़कियाँ सारी ही घर की इत्रदानी हो गईं।

विनोद तिवारी 'मानस' गुना

मुक्तक

1.

कभी खुशियों में बहते हैं कभी ग़म में बहें आँसू,

कभी खामोश होते हैं कभी सब कुछ कहें आँसू|

छुपाकर दर्द को अपने सजाते है हंसी लब पर।

दिलों में जो छुपा बेबाक बरबस कह रहें आँसू|

2.

भीषण झंझावातों में भी गीत वतन के गाते है।

जिनसे गर्वित पूरा भारत पत्थर कैसे खाते है।

हमें सुलाकर रात चैन से अपनी नींद उड़ाकर के,

भारत माँ की लाज बचाने बारूद पर सो जाते है।

3.

निकले तेरी जुबान से हैं लफ्ज़ खूबसूरत,

यानी कि सब जहान से हैं लफ्ज़ खूबसूरत,

बस शर्त ये है हो वो मोहब्बत के लहजे में,

धरती से आसमान से हैं लफ्ज़ खूबसूरत |

4.

ईश वरदान हूँ वसुधा पे मुझे आना है,

फूल हूँ बाग का खुश्बू से महक जाना है।

तोड़ लाऊंगी चांद तारों को मैं हाथों से,

बेटियों से ही चले जिंदगी समझाना है।

5.

विरासत दे नहीं सकती विरासत दे नहीं सकती।

तज़रिबे से जो मिलता है वसीयत दे नहीं सकती।

हकीकत है जिसे झुठला नही सकते कभी भी हम,

मुहब्बत से जो मिलता है सियासत दे नहीं सकती।

6.

खयालों की हवा तेरे सुकून-ए-जिंदगी देती,

वफा अहसास की नज़रें हुनर-ए-सादगी देती।

महकते प्यार से लम्हें खुशी अनमोल सजती हैं,

मुहब्बत हक अदा करती खुदा-ए-बंदगी देती।

अलका चौधरी,बालाघाट

माहिया

गुंजन के माहिये

१-- सावन की सौगातें
मन को चुभती हैं
तेरी मीठी यादें

२-- ओ परदेसी बालम
दिल में तू ही तू
हर सू तेरा आलम

३-- इक नाता जोड़ गया
लेकर दिल मेरा
तू यादें छोड़ गया

४-- आ जाओ मिल जाओ
हसरत है दिल में
इक बार नज़र आओ

५-- पलकों पर बैठाऊँ
तेरी ख़ातिर मैं
क्या क्या ना कर जाऊँ

६-- मन ये बनजारा है
सबसे ये जीता
ख़ुद से ही हारा है

७-- माही मनुहार करे
जब यूँ हँस - हँस के
दिल रख दे मान परे

८-- वारी - वारी जाऊँ
तेरी राहों के
सब काँटे चुन लाऊँ

९-- एक दीवानी हु ई
तेरी ख्वाहिश में
सबसे बेगानी हु ई

१०-- मत समय करो ज़ाया
फूलों का मौसम
कम वक़्त को है आया

११-- कोई क्या समझाये
मुरली जब बजती
राधा सुध बिसराये

१२-- जाने क्यों पहरे हैं
मेरी आँखों में
कुछ ख्वाब सुनहरे हैं

१३-- सुन बातें रेशम सी
डोली सजवा ली
माही ने दुलहन की

गुंजन श्रीवास्तव, कटनी (मप्र)

आलेख

॥ सब्र का फल और क़ब्र का फल ॥

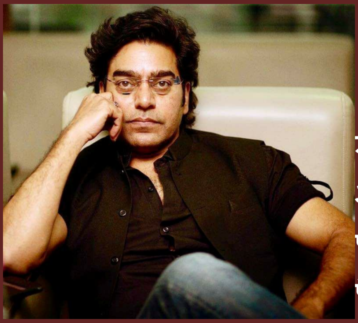

आज एक परिवार के आनंदोत्सव में शामिल हुआ तो उसी परिवार के दो बुज़ुर्गों की भीषण बहस का मूक श्रोता रहा। आनंद के बहुरूपियापन को देख अचम्भित रह गया। एक ही परिवार के दो लोगों के मन में वही आनंद अलग-अलग भाव पैदा कर रहा था। एक का आनंद दूसरे का विषाद था, तो दूसरे के विषाद में ही एक को आनंद मिल रहा था।

दोनों बुज़ुर्गों के चहरे पर लालिमा थी, किंतु एक का चेहरा क्रोध के आवेश में लाल था तो दूसरे का चेहरा आनंद के आह्लाद से लाल पड़ गया था। बड़े बुज़ुर्गवार ने अपने नाम में राम को पीछे रखा था सो वे 'लालराम' कहाते थे, तो छोटे बुज़ुर्गवार ने राम को आगे कर लिया तो वे रामलाल हो गए। बहस का विषय था सब्र का फल मीठा होता है। बड़े बुज़ुर्गवार ने छोटे बुज़ुर्गवार को लताड़ते हुए कहा की व्यर्थ की बात मत करो रामलाल की सब्र का फल मीठा होता है। यह ग़लत शिक्षा है। सब झूठ है- एकदम बकवास !! तुम जानते हो मुझसे ज़्यादा सब्र अपने परिवार में किसी ने नहीं किया, और इसका जो फल मुझे मिला ? इसका स्वाद कैसा है ? आज पूरी दुनिया देख रही है।

छोटे बुज़ुर्गवार ने उन्हें और बुरी तरह लताड़ते हुए कहा की तुम्हें सब्र का नहीं क़ब्र का फल मिला है। तुम क़ब्र के फल को सब्र के फल के नाम से बदनाम मत करो। जब ज़िंदगी भर सब्र रखा था तो अंत में आपको किसी और की क़ब्र पर जाने की क्या ज़रूरत थी जी ? तुमको मिली असफलता- सब्र रखने का नहीं, क़ब्र पर जाने का फल है।

ये सुनकर लालराम जी का क्रोध लपलपाने लगा वे आहत स्वर में बोले, ज़्यादा ज्ञान मत बाँटो, तुमसे ज़्यादा दुनिया देखी है मैंने, मेरा किसी की क़ब्र पर जाना पाप है ? और तुम्हारा उसी जगह केक ले जाना पुण्य है ?

मैं मरे हुए आदमी के हाथ जोड़ूँ तो पतित की कुख्याति पाऊँ ? और तुम ज़िंदा आदमी से हाथ मिलाओ तो पति (स्वामी) की ख्याति से लब्ध हो ?? मेरा झुकना मेरी भूल है ? और तुम्हारा झुकना तुम्हारी हूल है ?

रामलाल जी भी उत्तेजित हो गए बोले किसी की क़ब्र पर जाना शोक की निशानी है सो तुमको शोक मिला। और किसी के यहाँ केक ले जाना आनंद की निशानी है सो मुझे आनंद मिला। अपने ही हाथों को अपने ही हाथ से मिलाकर 'हाथ जोड़ना' व्यक्ति के स्वार्थी होने की घोषणा है , किंतु अपने हाथ को दूसरे के हाथ से मिलाकर- 'हाथ मिलाना' व्यक्ति के परमार्थी स्वभाव को चिन्हित करता है। तुम स्वार्थ से प्रेरित थे और मैं परमार्थ से। इसलिए तुम दुःख भोग रहे हो और मैं सुख।

लालराम बोले कुतर्क मत करो !! मैं अपने आप नहीं उनके बुलाने पर गया था। तुम तो बिना बुलाए ही वहाँ पहुँच लिए।

रामलाल बोले, पड़ोसी बुलाएगा तभी तुम जाओगे ये तुम्हारे अहंकारी होने का प्रमाण है। और पड़ोसी के उत्सव में मेरा बिना बुलाए पहुँचना मेरे निरअहंकारी चित्त की घोषणा है।

लालराम जी दाँत पीसते हुए बोले चुप रहो रामलाल..तुम मुझपर स्वार्थी अहंकारी होने का आरोप लगा कर मेरे जीवन की पूरी तपस्या को भ्रष्ट साबित करना चाहते हो ? जबकि तुम्हें पता है की मैंने अपने नहीं, अपने परिवार के अहंकार की रक्षा की है, अपने स्वार्थों को ताक पर रखके परिवार के स्वार्थों को सिद्ध किया है। तुम्हारे पास आज जो चमक है, जो सफलता है, जिसके मद में तुम मदमस्त होकर घूम रहे हो, और ये आनंदोत्सव माना रहे हो, वह मेरे वर्षों के अथक परिश्रम का ही परिणाम है। तुम मेरा सत्कार करने की जगह मुझे धिक्कार रहे हो ? अपने से बुज़ुर्ग का सम्मान करना सीखो, क्योंकि तुम भी कभी बुज़ुर्ग होगे और तुम्हें वही व्यवहार मिलेगा जो तुमने अपने बुज़ुर्ग के साथ किया है।

ये सुनकर रामलाल बोले यदि आपके सिद्धांत को मान लूँ बुज़ुर्गवार- तो फिर आपको आज जो तकलीफ़, पीढ़ा, अपमान, तिरस्कार, मिल रहा है वह आपके द्वारा अपने बुज़ुर्गों के प्रति किए गए व्यवहार का परिणाम है। यदि ऐसा है तो फिर अपनी वर्तमान स्थिति का दोष मुझे क्यों दे रहें हैं ?? यह आपके किए हुए कर्मों के फल ही होंगे जो आज आप तक लौट रहें हैं ? आपको क़ब्र पर जाने का शौक़ था तो सबने सोचा की आप हमारे बुज़ुर्ग हैं, आपको अपने शौक़ की पूर्ति के लिए दूसरों की क़ब्र पर क्यों भटकने दें ? इसलिए हमने आपके लिए, आपकी ही क़ब्र खोद दी। इसमें बुरा मानने की क्या बात है ? और वैसे भी अपनों की क़ब्र अपने ही खोदते हैं, ये रिवाज है, संस्कृति है। कृपया इसे हमारी विकृति ना माने।

अजीब से तर्कों को सुन लालराम जी सन्न रह गए। उन्होंने विचार किया की रामलाल कुतर्क पर उतारू है, कुतर्क की प्रवृत्ति 'कथ्य' परक होती है, जिसमें तथ्य और सत्य का कोई स्थान नहीं

होता। कथ्य, सुनने-समझने में नहीं सिर्फ़ कहने में विश्वास रखता है। इसलिए दुनिया का श्रेष्ठतम तर्क भी कुतर्क की भूमि पर परास्त हो जाता है। कुतर्क की विशेषता होती है की वह अपने चेहरे पर तर्क का मुखौटा लगा के बहस की भूमि पर खड़ा होता है, तर्क के ऊपर अपनी विजय के कारण यह लोगों को तर्क का परिष्कृत रूप दिखाई देता है जिससे कुतर्क को सु-तर्क की प्रतिष्ठा भी मिलती। कुतर्क शोर प्रधान होता है इसमें तर्क की, संवाद स्थापित करने वाली प्रवृत्ति नहीं होती। कुतर्क की शक्ति ही कथ्य है, सिर्फ़ कहना, इसलिए लगातार बोलते रहना इसका स्वभाव है। कुतर्क के कथ्य रूपी एकालाप, प्रलाप, विलाप की तीव्रता और शोर इतना भीषण होता है की इसमें तर्क के तथ्य और सत्य सुनाई ही नहीं पड़ते। इसलिए कुतर्क से निपटे का एक मात्र कारगर तरीक़ा है 'मौन'। सो बेहतर है के रामलाल के कुतर्क के जवाब में मुझे मुखर नहीं मौन हो जाना चाहिए।

मुखर व्यक्ति जब मौन होता है तब भी, और मौन व्यक्ति जब मुखर होता तब भी, दोनों स्थितियों में यह समाज के आकर्षण और बदलाव का केंद्र होते हैं। सो लालराम जी घोर मौन में चले गए।

रामलाल जी अपने बुज़ुर्गवार को मौन देख चिंता में पड़ गए !! क्योंकि वे इस बात को जानते थे की लालराम जी सच में इतने सब्र वाले हैं की वे क़ब्र में भी सब्र से रामलाल की प्रतीक्षा करेंगे।

इस भीषण विचार के आते ही रामलाल जी ने अपने से छोटों को फुसफुसा कर आदेश दिया की लालराम जी की क़ब्र खुदी रहे, उन्हें दिखती रहे किंतु किसी भी क़ीमत पर लालराम को क़ब्र तक नहीं पहुँचना चाहिए। क्योंकि मैं इनसे बहुत प्रभावित हूँ, ये मेरे प्रेरणास्रोत हैं, ये जो करते हैं मुझे वही करने की इच्छा होती है, ये जहाँ पहुँचते हैं मैं वहीं पहुँचने को फड़फड़ाने लगता हूँ। इसलिए कहीं ये क़ब्र में पहुँच गए तो मैं भी क़ब्र में पहुँच जाऊँगा।

रामलाल जी के इस कथन से परिवार के उनसे छोटे बुज़ुर्ग, जो रामलाल के रहते परिवार में सबसे बड़े बुज़ुर्ग के औहदे को प्राप्त नहीं कर सकते अव्यक्त अपूर्व आनंद की आभा से लाल हो गए। उन्होंने विचार किया की लालराम जी के विषाद और खिन्नता से उपजे इस मौन को आमरण अनशन की तर्ज़ पर मृत्युपर्यन्त मौन में बदलने के लिए प्रेरित करना चाहिए जिससे वे शीघ्र ही, स्वयं के लिए खुदे हुए खड्ड में प्रतिष्ठित हो जायें।

लालराम समझ रहे थे की रामलाल क्या कह रहे हैं उन छोटे बुज़ुर्गों से क्योंकि उन्होंने भी अपने प्रेरणास्रोत बुज़ुर्ग को अभी तक उनके लिए खोदी गई क़ब्र में जाने से रोका हुआ है। अचानक लालराम जी ने देखा के परिवार के कुछ सदस्य उनके लिए खुदे खड्ड के बाज़ू से एक और

खड्ड खोद कर तैयार कर रहे हैं। रामलाल के लिए अपने परिवार के ही कुछ लोगों को विषाद से भरा देख लालराम जी एक दिव्य आनंद की अनुभूति भर गए।

कहानी में स्मरण रखने योग्य "शिक्षा"

१- सब्र का फल हर कोई चाहता है, किंतु क़ब्र का फल कोई भी नहीं चाहता।

२- जिसने सब्र किया है वही उसके फल का आनंद उठाये यह आवश्यक नहीं, किंतु सब्र करने वाले के परिजन अवश्य ही उसके फल का आनंद उठाते हैं।

३- आज का प्रेरणास्रोत कल की प्रतारणा का स्रोत होता है।

४- लाल को राम बनाने में नहीं, बल्कि राम के लाल होने में ही भलाई है।

५- अपनी क़ब्र अपने ही खोदते हैं।

६- क़ब्र खुदने और क़ब्र में दफ़नाये जाने के बीच का समय ही नर्क है। इसलिए अपनों को साध कर रखिए ताकि वे आपके जीते जी ही आपकी क़ब्र ना खोद दें।

७- कुछ लोगों के जीते जी हाथ जोड़ें या मरने के बाद, वे दोनों ही सूरतों में आपके अकल्याण का कारण होते हैं।

८- अतीत और भूत में अंतर होता है। हमारे बुज़ुर्ग हमारा अतीत होते हैं इन्हें भूत मत बनाइए। क्योंकि भूत कैसा भी हो, किसी का भी हो, हमारे भय और परेशानी का कारण होता है।

९- 'काल' का अर्थ समय भी होता है और मृत्यु भी, इसलिए अपनी उपलब्धियों को, सफलताओं को, सामर्थ्य को स्वयं की नहीं, समय की सौग़ात मानकर "काल को याद रखिए।" क्योंकि काल को भूलने की सूरत में ये समय का सुदर्शन रूप छोड़ मृत्यु का भयंकर रूप धारण कर लेता है। परिणामस्वरूप हम संसार के द्वारा सदा के लिए भुला दिए जाते हैं।

शुभम भवतु

आशुतोष राणा (फिल्मस्टार)

मुम्बई

संस्मरण

बड़ा आम

परसों सात मिनिट की आंधी आई और बड़े आम को अपने साथ ले गई।रह गईं बचे हुए ठूंठ और धरती पर लेटे विशालकाय बड़े आम की छांव में बिखरी मेरी आधी सदी की महीन-मोटी यादें जो घुटनो से पैरों पर खड़े होने, चलने दौड़ने और अब थकती हुई जिंदगी तक आकर ठहर गईं।

एक अधूरी ख्वाहिश अब इन कुम्हलाते पत्तों के साथ दफ़न हो रही है।सोचा था वापस जाकर फिर से इस बड़े आम के नर्म पत्तों के नीचे धरती की गोदी में उसी तरह अपने ही जूतों का तकिया बना लेट, भटकती हुई ज़िंदगी के साढ़े तीन दशक की थकान उतारूंगा, जैसे कभी दोपहर में हल को किनारे कर बैलों के साथ इसकी ठंडक में धूल में लिपट कर सुकून पाता था। हाँ हो सकता है अब मुझे यह बड़ा सा कुनबा नीचे लेटा देख पलँग गद्दे, चादर लेकर दौड़ता चला आता और डांटते हुए कहता यह क्या करते हो जमीन पर मिट्टी में क्यों लेटे हो?उन्हें पता ही नहीं होगा इसका उत्तर पाने के लिए कितना जमीन और मिट्टी होना पड़ता है।

खेत और घर लगे हुए है आज भी।लाजमी है तब भी थे।इतने ही करीब, जितना दिल, जान के करीब होता है।तब मशीन नहीं थी। बड़े आम की छांव में ही खलिहान बनता था।हमारा भी, और आसपास के मिलने जुलने वालों का भी।महीनों दावनी उडावनी होती थी।चैत से शुरू होकर पूरा बैशाख। और हम बच्चे बड़े आम की छांव में अंडा डावरी, जैसे तमाम देशी खेल खेलते कब बड़े हो गए हमे तो पता नहीं मगर बड़े आम के तने और शाखाओं ने अपने बही खाते पर पूरा हिसाब रखा हुआ था।

यही वो बड़ा आम है जिसकी छांव के तले कद्दू काका की बिटिया नब्बी(नर्बदी) की बरात आकर रुकी थी।यही वह बड़ा आम था जिसके तले टीका बाबा का शिवचरण जाटव दूल्हा बन कर कुसियारी से दुल्हन लेने सजधज कर घोड़ी पर बैठ निकला था।यही वो बड़ा आम था जिस पर पूरे इलाके के सबसे ज्यादा मीठे सबसे अगेते(सबसे पहले)10 हजार से ज्यादा रसीलेआम उतरते थे और हमारे परिवार की साख में चार चांद लगा देते थे।दिल्ली में सारे रिश्तेदारों के घरों की दालान बड़े आम की सुगंध से महकती थी।हम तो पलाश के पत्तो में पीले हो रहे इन आमों की चोरी करते करते ही प्राइमरी स्कूल से कॉलेज पहुंचे थे।और हाँ आज मंचों पर कविता पढ़ते हुए तालियों की जो गड़गड़ाहट है न, इसी बड़े आम के पत्तों की सरगम है।इसी ने तो कविता का "क" सिखाया है इसने ही तो लिखने का "ल" सिखाया है।आज मेरी हर असि और मसि में इसी बड़े आम की छांव घुली है।

13 जून 1979 को भी परसों की तरह आंधी आई थी।गुठेहरी आम इसी तरह लेट गया था।आमन, गोला, खंती वाला भी घायल हुए थे।बड़े आम की कुछ बड़ी डालें ज़मीन पर आ गईं थीं लेकिन उसकी छांव फिर सम्भल गई थी। फिर पहले जैसी घनी हो गई थी।

तब कमलेश, कुलदीप, विनोदसिंह, शशिपाल, बृजेन्द्र,पवन, सतपाल,राजू, रमेश, विनोद,बंटी, भंवरा, फुल्लू, इशरत, अनवर वगैरह हम बढ़ई से बनवाये बल्ले और कार्क की बाल से क्रिकेट खेलना सीख रहे थे और बड़े आम के विशालकाय तने को विकेट मान कर आउट है आउट है चिल्लाने की आदत डाल रहे थे।जब दाढ़ी मूंछे झांकने लगी और खेती किसानी करने की तरफ कदम बढ़े तो पाया मेरे पसीने की हर बूंद को बड़े आम ने शीतल पंखा दे कर पीया है।

अभी कल की ही तो बात है जब सगाई और विवाह के मध्यकाल में सरिता जी को बड़े आम के नीचे बैठ कर एक वर्ष तक भावनाओं की चिठ्ठियां लिखीं और उनके जवाब बांचे थे।तब ये मुया व्हाट्सएप, मोबाईल तो छोड़ो टेलीफोन तक नहीं होता था।फिर वो दिसम्बर 86 का महीना जब सरिता जी सात फेरे ले मेरी अर्धांगनी बन कर आई तो हरे भरे खेत, गेंहूँ की उगती कोंपलों और नए बौर की महक बिखेरते इसी बड़े आम ने हमे घण्टों नरम दूब पर बैठ बतियाते देखा सुना है। बड़े आम ने हर्षित होकर जनवरी 87 में जब मुझे वर्दी पहनने के लिए सागर रवाना किया था तो अपनी शीतल छांव मेरे साथ ही तो रख दी थी। ट्रेनिंग का वह लम्बा सा एक वर्ष सरिता जी ने न जाने कितनी बार इसी बड़े आम को अपना विरह काल सुना बतिया कर बिताया था।

कल जब विनोद ने बताया भैया बहुत तेज आंधी में बड़ा आम पूरा गिर गया मुझे लगा मेरी उम्र की आधी सदी ज़मीदोज़ हो गई है। मैं जब भी घर जाता था कुछ पल बड़े आम के साथ बिताता था। अभी हफ्ते भर पहले ही मैं और सरिता जी जब मंदिर में खड़े हो पास ही खड़े झूमते इस बड़े आम के सानिध्य को निहार रहे थे तो मैंने कहा था बस अब रिटायरमेंट के बाद यहीं हमारी कुटिया बनाएंगे। इसी बड़े आम के प्यार के तले, और सरिता जोर से हंस दी थी अपने बीते हुए तीसरे दशक की कोमल यादों को लेकर।

बम्बई में बसे बच्चे सिर्फ आम के स्वाद से परिचित हैं। शायद इसकी छांव से उतना परिचय नहीं है उनका।बुजुर्ग बताते हैं दो सदियों का लंबा कालखण्ड इस बड़े आम ने देखा है।

मेरा प्रणाम है मेरे बड़े आम को जो पिता के जाने के 6 माह बाद ही विश्रांत हो गया। शायद उनका सात दशक से अधिक का साथ छूटना इसे भी कमजोर कर गया।

चौ. मदन मोहन समर, भोपाल

संस्मरण

झूठ

ये बात आज से करीबन 8 साल पहले की है अक्षत तब नर्सरी में गया ही था और स्कूल का दूसरा ही दिन था। बहुत रो रहा था स्कूल नहीं जाना , तो हमने उस से कहा ठीक है बेटा "तैयार होकर बस स्टॉप पर चलते हैं, बस वाले भैया को बोल कर आ जाएंगे की आज स्कूल नहीं जाना"।

छोटा सा मासूम अक्षत बातों में बहल तैयार हो गया मन मार के और बस स्टॉप पर बस देखते ही रोने लगा।

तब मैडम ने उसे प्यार करते हुए बस में बिठा लिया और अक्षत आंसूओं से भरी आंखों से हमें देखता रहा।

मन बहुत भारी था यूँ अक्षत को स्कूल भेज और डरना स्वाभाविक भी था ...दूसरा ही दिन था स्कूल का।

किसी तरह 11 बजे और हम बस स्टॉप पर लेने गए। बस रुकी बाकी बच्चे उतरे अक्षत दिखा ही नहीं।

मैडम से पूछा , उन्होंने 3से 4 आवाज़ भी लगाई तब भी सामने आया ही नहीं। अब तो बुरी तरह डर गए ये क्या हुआ।

और बस से पुकारा फिर भी कोई जवाब नहीं। सहमे से बस में ही चढ़ गए और देखा अक्षत सीट के साथ दुबका हुआ था आँखें बंद करके। हमने उसे गले से लगाया और पूछा" बेटा मम्मा डर गई थी,आप नीचे क्यों नहीं आ रहे थे" वो सूनी सी आँखों से ताकता हुआ बोला "आपने सुबह झूठ क्यों बोला" घर से कहा भैया को बोलकर आएंगे और रोते हुए स्कूल भेज दिया। मैं भी तो डरा था।

काटो तो खून नहीं, बिल्कुल निरुत्तर थे उसके मासूम सवाल के आगे।

उसे गले से लगा कहा 'बेटा पक्का वाला प्रॉमिस आज से मम्मा कभी ऐसे झूठ नहीं बोलेगी आपसे'। तब जाकर अक्षत के मासूम पर हल्की सी हंसी आयी और हमें जीवन का सबक मिला।

मीनाक्षी सुकुमारन, गागियाबाद

लघुकथा

एक परिवार की मौत

'गौ माता की जय' जोर से नारा लगाते हु एबाबू जी के दोनों पोतों ने प्रवेश किया.

'कहाँ से आ रहे हो इतनी रात गये ? ये गौ माता की जय तो ठीक है पर घर में बंधी गौ माता को तो कभी चारा डालते बनता नहीं तुमसे !'

'अरे! दादा , आज हमने गौ माता की रक्षा की है , एक ट्रक वाले की वो ठुकाई की है कि ससुर ज़िन्दगी भर गाय का नाम भी न लेगा ...हाँ . अब हम गाय बचायें या गाय को चारा डालने जैसा छोटा काम करें !'

तभी एक आदमी दौड़ता हु आआया और बोला –

'अरे! तुम दोनों यहाँ से भाग जाओ . जिसको तुमने पीटा है वो मर गया है और अब पुलिस तुम्हें गिरफ्तार करने आयेगी . बचना है तो भाग जाओ यहाँ से .'

'अरे! दादा , हमें बचाओ . ये तो गलत हो गया हम से .'

'मैं पहले ही कहता था तुमसे कि कानून हाथ में मत लो. गाय को बचाना है तो चौकसी करो पर पुलिस के साथ . गाय बचाते-बचाते अब तुम आदमी के हत्यारे तो बने हो कानून की नजर में ...पर अनजाने में तुमने एक परिवार को बे-मौत मार दिया है . ये कानून तुम्हें एक मौत की सजा देगा ....पर परमात्मा तुम्हे एक परिवार की मौत की सजा देगा .'

कीचड़ भी तो चाहिए

'ओ! भाई साहब , हम तो आपसे सीधी सी बात पूछ रहे हैं . असलम के साथ अपनी बिटिया का ब्याह कर दो और हमारे भाई की बिटिया रुकैया को अपनी बहु बना लो दूसरे बेटे की !'

' कैसी बात कर रहे हैं आप भाई जान ! लोग हमारा जीना दुस्वार कर देंगे .हमें समाज में रहना है .'

'अरे! भाई जी ! अब डर काहे का है ...जब हिन्दू मुसलमान मिलकर मंदिर बना सकते हैं तो हम क्या परिवार भी नहीं बना सकते !'

'सही कह रहे हैं आप ! ये नेता लोग अपने परिवार तो बना लिए ...हमको लव जिहाद का पाठ पढ़ा दिए और अब कह रहे हैं कि सबका डी.एन.ए. एक है ....तब भाई हमारे गोत्र और बाकी चीजों का क्या होगा?'

'हा हा हा ....ये बात कह कर ये राजनीति चमका रहे हैं ....दिल साफ़ नहीं हैं इनके, बाद में खुन्नस निकालेंगे !'

'अरे ! भाई काम की चीज पकड़ो ...वैसे भी सफाई अभियान चल रहा है ...इस धर्म की दीवार पर मारो झाड़ू और दिल में कमल खिलाओ !'

'कमल खिलाने के लिए कीचड़ भी तो चाहिए ....हा हा हा ...'

शब्द मसीहा, दिल्ली

लघुकथा

शादी

अल्मारी में से झाँकते, चमकीले से लाल रंग के परिधान को देखकर पाँच वर्ष की मिनी उसकी ओर आकर्षित हो उठी और उतावली हो चिहुँकउठी, “माँ ये लाल रंग का क्या है ? मुझे भी दिखाओ न |”

“लो देख लो, ये मेरी शादी का लहँगा है |”

“तुम्हारी भी शादी हु यीथी क्या, मेरी गुड़िया की तरह ?”

ऋचा हँस पड़ी औए बोली, “हाँ हु ईथी न तेरे पप्पा के संग | शादी के बाद उनके साथ विदा होकर यहाँ आ गयी |”

“उसके पहले कहाँ रहती थी |”

“उसके पहले मैं तेरे नाना-नानी ले पास रहती थी, मै उनकी बेटी हूँ न, जैसे तू मेरी बेटी है | क्या समझी ?”

“तब तो मुझे शादी करनी ही नहीं |”

“अरे मेरी गुड़िया, शादी की चिंता छोड़ दे अभी | पहले तुझे अच्छे से पढ़ना-लिखना है बस |”

“मगर मम्मा, आज तो पीहू से कह के रहूँगी, मैं अपनी गुड़िया को ही क्यों विदा करूँ ? वह अपने गुड्डे को विदा क्यों नहीं करती ?”

टच_फोन_का_टच

छह वर्ष का जयन तेज बुखार में तप रहा था | डॉक्टर के यहाँ से लौटकर, निधि उसके माथे पर बराबर पानी की भीगी पट्टियाँ बदल-बदल कर रखती जा रही थी | मगर बुखार कम होने का नाम नहीं ले रहा था |

आँखें मुंदी जा रही थीं, वह पापा-पापा की रट लगाए हुए था | निधि की आँखों से आँसू बह निकले | वह उसे दुलराते हुए बोली, "घबराओ मत बेटू, मैं तुम्हारे पास हूँ न | पापा टाउन के बाहर गये हैं, देखना कल तक जरूर आ जायेंगे |"

"हमको मालूम है, तुम झूठ बोल रही हो | केवल स्कूल जाते समय पापा दिखाई पड़ते हैं और रात में जब हम सो जाते हैं, तब वो लौटते हैं |"

उसकी बातें सुनकर निधि परेशान हो उठी, मगर खुद को संयत करके बोली, "पापा का काम ही ऐसा है, जिसके लिए वह बहुत मेहनत करते हैं | हम सबको बहुत प्यार करते हैं | देखना जब आयेंगे, तुम्हारे लिए खिलौने लायेंगे |"

"नहीं, हमें खिलौने नहीं चाहिए | उनसे फोन करके कह दो, वह तुरंत घर आ जायें | नहीं तो जयन उनसे कट्टी कर लेगा |"

निधि ने उसके गाल चूमते हुए कहा, "फोन मिलाया था बेटू, लेकिन पहुँच के बाहर है | वैसे भी वह जरूरी मीटिंग में हैं, नहीं तो वीडियो कॉलिंग करा देती |"

उसने फिर से आँखें मूँद ली |

"लो जयन, देखो पापा ने तुम्हारे लिए मैसेंजर पर कितने सारे फ्लाइंग-किस और स्माइलीज भेजें हैं |" सुनते ही उसने तुरन्त अपनी आँखें खोल ली और स्क्रीन पर स्माइलीज को देखते हुए बोला, "मम्मा, क्या ऐसा भी कोई टच फोन आता है, जब चाहो टच करने पर, स्क्रीन में से पापा का हाथ बाहर निकल कर आ जाए और मेरे गालों को टच कर जाये |"

प्रेरणा गुप्ता कानपुर - यू पी

लघुकथा

शादीशुदा

वो ट्रेन में मेरे सामने की सीट पर बैठी थी। इतनी खूबसूरत थी कि सब उसे ही देख रहे थे। मेरी नजर भी बार बार उसके मासूम चेहरे पर जा रूकती। अगले स्टेशन पर डिब्बा लगभग खाली हो गया। मैंने बड़े अपनत्व से उससे पूछा "बहन तुम बहुत सुंदर हो। कौन हो तुम कोई फिल्म वाली ?

वो खोखली हंसी के साथ बोली "मैं शरीर हूँ बिना आत्मा का जिसे कभी मिनटों कभी घंटों के हिसाब से खरीदा जाता है और इस्तेमाल कर वापिस दुकान में सजा दिया जाता है ।"

मुझे कहीं दूर सोच में गुम देख वो फिर बोली "क्यों मेरा गणित समझ नहीं आया न।"

"नहीं बहन समझ न आने जैसा इसमें क्या है। हमारे समाज की ज्यादातर औरतों का गणित यही है।बस बहन तुम्हारे ग्राहक रोज बदल जाते है और मैं शादीशुदा हूँ।"

गरीब

"अरे! राजू सुना तूने कल फिर राम मंदिर बनाने को ले कर जुलूस निकाला गया।जाने कितनों के सर फट गए और दो तो जान से ही गए।"

"हाँ दीनू पता है उस इलाके में बहुत ही टेंसन है । पता नही इस दंगे फसाद से कौन से भगवान खुश होने वाले है । चल छोड़ ये सब गाड़ी लग गई है स्टेशन पर सवारी आती होंगी ।"

"ओ रिक्शे वाले भईया राम लला जन्म स्थान जाना है"

"नहीं बाबू जी वहाँ नहीं जाऊंगा"

"अरे फालतू पैसे ले लियो"

"नहीं बाबू जी फिर भी नही जाऊंगा"

"क्यों रे मुसलमान है क्या तू?????"

"गरीब हूँ बाबू जी। हिंदू मुसलमान तो बाद की बातें है।वहाँ बहुत टेंसन है। जिंदा रहा तो बच्चों को रोटी दूंगा न।"

और राजू अगली सवारी की और बढ़ गया।

डा. सुषमा गुप्ता,फरीदाबाद

कहानी

बहू घर चलो

रात बीतने को आई किन्तु वकील साहब की आँखों में नींद नहीं थी| सारी सात वे अँधेरे में ही कमरे की छत की ओर आँखें गड़ाए ताकते रहे| कभी करवट बदलते, कभी उठकर बैठ जाते| लग रहा था बहुत ही उधेड़बुन में थे| जिन्दगी में अक्सर दोराहों का सामना हो जाता है जिनमें किसी एक रास्ते को चुनना बहुत कठिन लगता है| किन्तु निर्णय तो लेना ही पड़ता है उन्हें, जो सभ्य और संस्कारी होते हैं| जिनमें दूरदर्शिता नहीं होती उनके सामने कभी दोराहे नहीं आते...जीवन जैसे चल रहा है, बस ठीक है|

वकील साहब का एक सुखी परिवार था| सुंदर पत्नी और शादी के लायक एक बेटा था जिसे वे बहुत प्यार करते थे| गाँव में अपनी खेती-बाड़ी थी, प्रैक्टिस भी खूब चलती थी| धनाढ्यों में गिनती होती थी उनकी| महल जैसा घर और घर में नए मॉडल की दो गाड़ियाँ थीं, एक उनके लिए और दूसरी उनके सुपुत्र के लिए| वकील साहब दिन भर किताबों में उलझे रहते| बेटे की देख-रेख का सारा भार उनकी पत्नी पर था| नवाबों की तरह वह पल रहा था| जब भी पैसे की जरूरत होती माँ इन्कार नहीं करती| बेटे से सख्ती नहीं कर पाती थीं| नतीजा यह रहा कि वह बिगड़ैल नवाब के रूप में जाना जाने लगा| किसी तरह से उसने ग्रेजुएशन तक की पढ़ाई की थी| आकर्षक डीलडौल, घुँघराले बाल, गोरा चिट्टा था| बचपन से कभी अभाव नहीं जाना था इसलिए पैसे को पानी की तरह बहाता था| गुस्सा तो नाक पर ही रहता| जब वह किसी तरह की कोई नौकरी में नहीं जा सका तो वकील साहब ने बिजनेस में लगा दिया| यहाँ वह सफल हुआ, क्योंकि उस बिजनेस में दबंग की ही जरुरत थी|

इतने धनी-मानी घर में अपनी बेटी को देने के लिए कई पिता उत्सुक थे| खूब रिश्ते आने लगे| अन्त में हर प्रकार से जिसे योग्य समझा गया वह निहारिका थी| लड़की की सारी खूबियों से सुशोभित...अर्थात लम्बी , गोरी, घर के कामकाज में निपुण, सुशील और आज्ञाकारिणी| सभी खुश थे| वकील साहब की पत्नी बड़े ही शौक से शादी की खरीदारियाँ कर रही थीं| निश्चित समय पर विवाह संपन्न हुआ| घर में खूब रौनक आ गई| इस घर में आकर निहारिका भी अपने भाग्य सराह रही थी|

सुंदर पत्नी पाकर वकील साहब का बेटा भी प्रसन्न था| हमेशा दोस्तों के साथ घूमने के बजाय घर में ही रहता| किन्तु अपने बेटे के स्वभाव को लेकर वकील साहब सदा सशंकित रहते| बहू की हर जरूरत और सुख सुविधा पर नजर रखते| बहू भी सास-ससुर की सेवा में तल्लीन रहती|

समय बीता...वकील साहब और उनकी पत्नी दादा-दादी बने| पोते को गोद में ले फूले न समाते थे| दिन बीतने लगे|

एक दिन वही हुआ जिसका डर था...सभी लोग डायनिंग टेबल पर बैठे खाना खा रहे थे| बेटे ने निहारिका को गरम पराठा लाने को कहा...तभी मुन्ना रोने लगा| निहारिका उसे संभालने चली गई| नवाबज़ादे ने इसे अपनी तौहीन समझा और खाने की प्लेट जमीन में पटक दिया| माता-पिता तो उसके गुस्से से वाकिफ़ थे ही, किन्तु निहारिका के लिए पति का यह रूप नया था| वह सहम गई और रोने लगी| वकील साहब ने भी खतरे की घंटी को समझा| किसी तरह से बहू को समझाया| निहारिका बच्चे के कारण उसपर अधिक ध्यान नहीं दे पाती थी| इस कारण वह रईसजादा अधिकतर समय घर के बाहर बिताने लगा और बुरी संगति में पड़ने लगा|

उसके बाद इस तरह की घटनाएँ अक्सर घटने लगीं| मैके के अच्छे संस्कार लेकर आई थी, इसलिए घर को अखाड़ा नहीं बनाना चाहती थी| वह हरसंभव चुप रहने का प्रयास करती|

निहारिका की चुप्पी वकील साहब के बेटे की हिम्मत बढ़ाती गई| अब वह कभी- कभी निहारिका पर हाथ भी उठा देता| यह निहारिका को बहुत बुरा लगता फिर भी सास- ससुर का ख्याल करके चुप रह जाती क्योंकि उनसे उसे कोई शिकायत नहीं थी|

गुस्सैल तो वह था ही, किन्तु हर हमेशे मार-पीट का माहौल निहारिका को बरदाश्त नहीं होने लगा| अब तो वह किसी किसी रात घर भी नहीं आता था| वकील साहब की चिन्ता बढ़ती जाती थी| बेटे को समझाना चाहा, लेकिन उसका मन तो कहीं और उलझ गया था| वह निहारिका की ओर देखना भी पसन्द नहीं करता था| एक बार निहारिका का मन हुआ कि वह सब कुछ छोड़छाड़ कर वापस मैके चली जाए किन्तु संस्कार यह कदम उठाने की इजाजत नहीं दे रहे थे|

एक दिन तो हद ही हो गई...वह नशे में धुत लड़खड़ाता हुआ आया और पत्नी को घर से निकल जाने का आदेश दिया| वह सकते में आ गई| उसने ससुर जी की ओर देखा| वकील साहब ने उसे समझाने की कोशिश की किन्तु वह कहाँ समझने वाला था| उसने उनके साथ भी बदतमीजी से बात की| निहारिका कुछ बोलना चाह रही थी तो नवाबज़ादे ने उसे जोर से धक्का मारा|

अचानक हुए इस प्रहार को वह झेल नहीं पाई| गोद में मुन्ना भी था| दोनों ही औंधे मुँह गिर पड़े| उसने किसी तरह मुन्ने को तो बचा लिया किन्तु खुद उसका सर जमीन से टकरा गया| सर से खून निकलने लगा| मुन्ना बेतहाशा रोए जा रहा था| माँ ने कुछ कहना चाहा तो उन्हें भी चुप कर दिया| परिस्थिति बेकाबू हो गई थी| वकील साहब बेटे की इस हरकत से बहू के सामने शर्मिन्दगी महसूस कर रहे थे| समय पर बेटे पर अंकुश न लगाने का परिणाम सामने था|

उन्होंने डॉक्टर को बुलाया और बहू की मरहम पट्टी करवाई| डॉक्टर से उन्होंने झूठ बोल दिया कि वह सीढ़ियों से गिर गई है|

अभी तक निहारिका ने अपने मैके में कुछ नहीं बताया था| किन्तु वह पढ़ी-लिखी लड़की थी|

जहाँ तक हो सका उसने सहनशीलता दिखाई...किन्तु कब तक? यह सवाल उसके जेहन में बार-बार उठने लगे| मुन्ने के भविष्य का सवाल भी सामने था|

उसने घर छोड़ने का फैसला ले लिया| अश्रुपूरित नजरों से उसने सास-ससुर से विदाई ली| वकील साहब के पास कहने के लिए कोई शब्द ही नहीं थे|

निहारिका पिता के घर के दरवाजे पर खड़ी थी| उसे विश्वास था कि पिता जी उसका साथ देंगे| काँपते हाँथों से उसने कॉलबेल बजाया| दरवाजा पिता ने ही खोला| बेटी के सर पर बँधी पट्टी देखकर उनका कलेजा मुँह को आ गया| अनुभवी आदमी थे, पल भर में ही सारा माजरा समझ गए| बेटी को गले से लगा लिया|पिता का स्नेहिल स्पर्श पाते ही वह फूट पड़ी| उसने रोते-रोते सबकुछ बताया| पिता ने निर्णय सुना दिया कि अब वह उस हैवान के पास वापस नहीं जाएगी|

इधर सारी दुनिया के लिए लड़ने वाले वकील साहब को अचानक सामने दोराहा नजर आने लगा| एक तरफ बेटा था तथा दूसरी ओर बहू और पोता| इसी उधेड़बुन में उन्हें सारी रात नींद नहीं आई थी| बेटा को घर छोड़ने के लिए कहें , दिल यह मानने को तैयार नहीं था| बहू जिसने कभी शिकायत का मौका नहीं दिया, उसे कैसे बेघर कर दें| उनका दिमाग काम नहीं कर रहा था| बहुत सोच-विचार कर उन्होंने फैसला ले लिया| पत्नी मानने को राजी न थी| उसे भी समझाया| वकील साहब बहू के मैके पहुँचे| निहारिका और उसके पिता ने आवभगत में कोई कसर नहीं रखा| वकील साहब ने कहा-“ बहू, घर चलने के लिए तैयार हो जाओ|”

निहारिका ने पिता की ओर देखा|

पिता ने कहा-“ क्षमा कीजिए वकील साहब, मैं आपकी इज्जत करता हूँ किन्तु बेटी को न भेजूँगा| मुझे उसकी जान पर खतरा नजर आ रहा है| शार्ट टेम्पर्ड व्यक्ति कब क्या कर बैठे, इसका कोई ठिकाना नहीं| आप यहाँ आते-जाते रहें, पर निहारिका को न भेजूँगा|”

“मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, ऐसा कुछ न होगा| मेरा घर बहू और पोते का है, अपने बेटे को मैंने घर से निकाल दिया है| निहारिका सम्मान के साथ वहाँ रहेगी|”

निहारिका के पिता अवाक् रह गए| ऐसा भी होता है कि बहू के सम्मान के लिए इकलौते बेटे को घर से निकाल दें| जिसने भी सुना वकील साहब के न्याय पर दाँतों तले ऊँगली दबाकर रह गया| वकील साहब बहू और पोते को आदर के साथ घर ले आए| बहू अपने स्वभाव के अनुरूप घर को सँभालती हुई मान मर्यादा से रहने लगी| पोते को उन्होंने बहुत अच्छी शिक्षा दी| अब वह एक ऊँचे पद पर कार्यरत था| एक बार वकील साहब के बेटे ने घर आने की कोशिश की किन्तु पिता से दो टूक जवाब सुनकर वापस लौट गया|

धीरे-धीरे वकील साहब का शरीर वृद्धावस्था की ओर बढ़ रहा था| निहारिका और मुन्ना जी जान से उनकी सेवा करते| कभी किसी भी काम के लिए उन्हें दोबारा नहीं बोलना पड़ता| वकील साहब की पत्नी बेटे के लिए दुखी रहती थी पर बहू और पोते से उन्हें कोई शिकायत नहीं थी|

समय बीता, मौत आनी थी, आई| वकील साहब का निधन हो गया| निहारिका निःशब्द रोए जा रही थी| उसे यही लग रहा था कि यदि उन्होंने सहारा नहीं दिया होता तो पिता के घर में वह जी जाती किन्तु एक बेचारी की तरह जिन्दगी हो जाती| माता-पिता बेटी को घर में रखकर समाज की आलोचना का शिकार बनते सो अलग|

अब दाह-संस्कार की बारी आई|वकील साहब का बेटा भी पिता के अन्तिम दर्शन के लिए मौजूद था| मुखाग्नि वही देना चाहता था| वकील साहब ने कह रखा था कि मरने के बाद उनकी वसीयत तुरत पढ़ी जाए और उस अनुसार ही काम किया जाए| वसीयत में यह लिखा था कि दाह-संस्कार का काम पोते के हाथो ही संपन्न हो| पत्नी के निधन के उपरांत सारी जायदाद निहारिका के नांम लिखी गई थी| जिसने भी सुना वकील साहब के न्याय पर दंग रह गया| अपने बेटे को छोड़ दूसरे की बेटी को सहारा देकर वकील साहब ने समाज के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत किया था|

ऋता शेखर 'मधु' , पटना

कहानी

एक सुबह ऐसी भी

नवीन ने जैसे ही गुनगुनाते हुए अंदर की ओर कदम बढ़ाए, प्रिया ने तभी अनुमान लगा लिया था ' क्या बात है ' बड़े खुश नज़र आ रहे हो. नवीन ने तुरंत शरारती लहज़े में कहा- हमारी ख़ुशी कहाँ डियर , बात तो तुम्हारी ख़ुशी की है. कह मुस्कुराने लगा. प्रिया को बड़ा गुस्सा आया. मन ही मन कुढ़कर बोली. इनकी खिझाने की यही आदत मुझे पसंद नहीं, पर समय की नज़ाकत समझ, मनुहार मिश्रित मुस्कान के साथ उसने कहा- " प्लीज! नवीन अब तो बता दो. मन बेताब हो रहा है. तो ठीक है सुनो- 'तुम्हारी सहेली शशि का फ़ोन कॉलेज में आया था. क्या??? हाँ उसने फ़ोन किया था कि आप प्रिया के हस्बैंड नवीन बोल रहे हैं? मेरे हाँ कहने पर उसने अपने आने की सूचना ट्रेन नंबर व कोच नंबर के साथ दी. ट्रेन साढ़े सात बजे आयेगी. आज ही आ रही है.

मुझसे मेरी सहेली का ज़िक्र बहुत बार नवीन पहले भी सुन चुके थे. मेरी बेस्ट फ्रेंड जो थी शशि. बचपन का साथ स्कूल से लेकर कॉलेज तक रहा.

' कैसी दिखती होगी शशि अब. '

"----------"

वह शशि के साथ ही प्रायः कॉलेज आया-जाया करती थी. कमर तक लंबे बालों की कसकर गुंथी चोटी, धैर्य इतना कि मैं हमेशा कहती, अगर ईश्वर भी तेरे धैर्य की परीक्षा ले तो उसे तुझे पास करना ही पड़ेगा. एकदम शांत रहने वाली लेकिन समझदार शशि.

इतने वर्षों के अंतराल में जो कुछ भी शशि के बारे में सुना था, वो सब सच था या गलत मन बार-बार सवाल पे सवाल करता जाता . ऐसा नहीं कि मैंने उसके पति ' नितिन ' को न देखा हो . आँखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा लगाये, अपनी विद्वता को स्थापित करता , दर्प से चमकता चेहरा था उसका. क्यों न हो, इतने बड़े बिजनेसमैन का इकलौता बेटा जो था.

कहाँ शशि मध्यम वर्ग , रूढ़िवादी परिवार की, साधारण जीवन जीने वाली, अध्यापक पिता की तीसरी और आखिरी संतान.

पहले बड़ी दो बहनों की शादी हो चुकी थी, वो भी सीमित साधनों वाले घर में. पर जब शशि के लिये इतने पैसेवालों का रिश्ता आया तो मना करने की गुंजाइश कहाँ थी. लगा उसकी लॉटरी निकल गई . उसे भी अपने भाग्य पर आश्चर्य हुआ नितिन की बुआ ने किसी शादी में देखा था. उन्हें अपने भतीजे के लिए

इससे अच्छी लड़की नहीं मिलेगी. उसकी सामान्य स्थिति, सीधापन देख ही उन्होनें पसंद किया था. भला आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियाँ न तो घर का काम करे; न कहना सुने. ये लड़की उसके भईया के यहाँ फिट रहेगी. पैसा नहीं है मास्टर जी के पास, फिर वो मना शायद ही कर पाएं. संदेश भिजवा वो घर जाकर अपने भाई को समझा आयी थी. और वही हु आ. शशि के पिता अपनी किस्मत और शशि के भाग्य को बार-बार सराह रहे थे. इस कन्या की चिंता उन्हें सता रही थी, जो पैसा प्रोविडेंट फन्ड का था उसे तो वे कब का खर्च कर बैठे थे. थोड़ी जमीन थी उसे बेचकर जैसे-तैसे कोशिश करते , फिर भी ऐसा घर- वर वो नहीं ला पाते. ईश्वर की इस विशेष कृपा पर वो निहाल थे. होते भी क्यों ना . जमीन बेचने की नौबत ही नहीं पड़ेगी. लड़के वालों का संदेश आया है. "शादी आर्य समाज पद्धति से होगी; लड़की कोई दहेज़ नहीं लायेगी."

शशि तेरी तो किस्मत खुल गई. फिर तू खुश क्यों नहीं. आखिर शशि ने अपना संशय ज़ाहिर किया. देख प्रिया न तो मैं इतनी खूबसूरत हूँ , ना बड़े बाप की बेटी. इस अमीर घराने को मैं कैसे पसंद आ गई? प्रश्न तो जायज़ था. लेकिन मौका सही नहीं. अरे ! छोड़ ना. कभी- कभी हमारी किस्मत में सब सुख लिखा हो तो ईश्वर ऐसे ही भेजता है.

शशि की शादी के कुछ साल बाद मेरी भी शादी हमारे कॉलेज के लेक्चरार नवीन से हो गई. शशि को कार्ड भेजा था; पर वो नहीं आ पायी. विवशता बतलाते हु ए शुभकामनाएं भेजी थी और जल्दी ही मिलने का वादा भी.

समय के साथ कब हमारे संपर्क सूत्र कम होते-होते टूट गये ; और हम जीवन के आपाधापी में उलझकर सब बिसरा बैठे, पता ही नहीं चला .

पिछली दफा जब मैं मायके गई थी , तभी यह खबर सुनी थी कि शशि ने अपने पति का घर छोड़ दिया है. मैं सन्न रह गई. आज इतने साल बाद यह सूचना - 'शशि मुझसे मिलने आ रही है' मुझे आश्चर्य-

मिश्रित ख़ुशी में डुबो गई. चलो शशि को मैं तो याद रही.

नवीन के हिलाने पर मैं चौंककर अतीत से तुरंत वर्तमान में लौट आयी . नवीन ने पूछा- शशि को लेने चलोगी ? मुझे तैयारी भी करनी है , ऐसा करो , तुम ही चले जाओ. मेरे अनुनय पर जाते- जाते नवीन कहते गए, मेरे आने तक स्वप्नों में खो मत जाना. मैं हँसकर काम में जुट गई.

निपटकर बैठी ही थी कि बेल बजी. मैं तुरंत बाहर आयी.

"पहचानी नहीं क्या ?" कह शशि एकदम से लिपट गई. स्नेह का तूफ़ान थमने पर भी मैं उससे कुछ पूछ नहीं पायी, किंतु अधिक रुकने की उसने स्वयं ही प्रतीक्षा नहीं की. कुछ पूछेगी नहीं ? शशि ने कहा . अपने को न रोक पाते हु ए मैं कह ही बैठी . शशि तुझे नितिन को छोड़ना नहीं था. .....

मेरी बात सुनकर वह अपने को रोक नहीं पायी. मैंने कहाँ छोड़ना चाहा था उसे. मज़ाक तो किस्मत ने मेरे साथ किया. तूने भी मुझपर अविश्वास कर लिया. काश ! मेरी पीड़ा का अंदाज़ा तू लगा पाती. पर अब मैं तुझसे कुछ नहीं छिपाऊंगी , कह शशि ने मुझे जो बतलाया; सुनकर मेरे भी आँसू निकल गए .

लाल साड़ी के पल्लू में, पुरुष के कांधे पर डाले गए , पीले दुपट्टे से गाँठ जोड़कर, अग्नि के समक्ष, पवित्र मंत्रोच्चार के साथ सात फेरे लेने से ; तन- मन से एक दूसरे को पति- पत्नी स्वीकारते हैं पर मेरे साथ ऐसा कहाँ हु आ अगर होता तो, बारात विदा कराकर घर जाते वक्त कोई अपने बगल में बैठी सद्यःविवाहिता को छोड़ शराब पीने कार रुकवा सकता था ? पहली बार की ऐसी कल्पना शायद ही किसी लड़की ने आजतक की होगी . फिर जो उबकाई मुझे आयी तो पूरे रास्ते न रुकी .

पूरे कार्तिक मास प्रातः स्नान करने वाली , हर नवरात्र में सुबह नंगे पैर मंदिर जाकर जल चढ़ाने वाली, हर सावन सोमवार का विधिपूर्वक व्रत करने वाली को ऐसा शराबी पति. मेरे साथ ऐसा क्यों हु आ बाहर से नितिन का जो रूप दिखता , पीने के बाद उसके एकदम विपरीत. मैं प्यार , गुस्सा, सेवा, मनुहार, कसम सब तरीके से समझा कर हार गई पर उसका पीना नहीं छुड़ा पायी. ज्यादा टोकने पर मार भी खायी. अपने पैसों की पीता हूँ , अगर तुम्हारी कोई जरुरत पूरी नहीं कर रहा हूँ तो बोलो . आजकल तो सभी पीते हैं सुन, मैं चुप हो जाती.

किसी लड़की के साथ एक बार बलात्कार हो जाये तो वह उस हादसे को आजीवन नहीं भूलती. परंतु मैं तो ना जाने कितनी बार अपने ही घर में इस हादसे से गुजरी हूँ . बगैर मन के मिलन के, मैं तन का समर्पण कब तक करती रहती. कितनी मार भी खायी मैंने इसके लिए. उस घर में किसी को साहस नहीं था , नितिन के खिलाफ कुछ बोलने या सुनने का. कहाँ जाती मैं ??.

मैंने नौकरी करने का मन बना लिया. जैसे भी हो मुझे धरती पर अपने पैर टिकाने हैं. घर पर तैयारी करती रही. कई परीक्षाएं भी दी और ईश्वर की कृपा से कुछ अंतराल बाद मेरी नौकरी लग गई. दूर गाँव में संविदा शिक्षक की. घर पर बताते ही हंगामा हो गया. मेरे इस फैसले को सुन नितिन ने क्या कहा, जानती हो.

इस घर में फैसले सिर्फ मेरे होंगे. घर मेरा है. अगर मेरा कहना नहीं मानती हो तो आज से अपना रास्ता अलग समझो. उस निर्जीव चार-दीवारी को नितिन " अपना घर " कह रहे थे और उसमे रहने वाली मैं जीवित होकर भी 'अपनी ' नहीं बन पायी. अगर तुमने अपने पैर घर से बाहर निकाले तो लौटकर आने की जरुरत नहीं . तलाक दे दूंगा. दृढ़ता से मन बना लिया. राह कठिन सही पर जीने का हौसला नहीं छोड़ूँगी.

घर छोड़ दिया. बाबूजी के पास गई, तो लगा वो मेरे नहीं नितिन के पिता हैं. वही बातें, वही समझाईश . वही डर लोग क्या कहेंगे. और कोई कमी तो नहीं है उस घर में तुझे. हमारे खानदान में आज तक किसी लड़की ने नौकरी नहीं की और न अपने पति को छोड़ा. चाल-चलन तो ठीक है उसका . पीना भी आगे छूट ही जायेगा.

देखो बेटा , इतने बड़े लोग हैं वो और तुझे पसंद कर शादी की है , तुझे अपनी किस्मत पर गर्व होना चाहिये . अपनी दोनों बहनों को देख . उनकी तुलना में क्या नहीं है तेरे पास. अपने पति की कमियाँ जग-ज़ाहिर नहीं करते. औरत धर्म "निभाने " का दूसरा नाम है. निभाना पड़ता है हर औरत को. थोड़ा सहन कर. समय के साथ सब ठीक हो जायेगा . घर की बातें बाहर जाते अच्छी नहीं लगती. घर वापिस लौट जाओ . जाकर माफ़ी माँग लेना. अभी कुछ बिगड़ा नहीं है. नितिन अवश्य ही तुझे माफ़ कर देगा.

मुझे यकीन नहीं आ रहा था कि बाबूजी भी मुझे दोषी ठहराएंगे. दोष उनका भी नहीं . जिस उम्र में वो हैं , वहां नया कुछ स्वीकार नहीं होता. पति अपनी पत्नि को कैसे भी प्रताड़ित करे , उसे सहना चाहिये. सिर्फ इसीलिये कि वह एक नारी है. पीढ़ी का यही अन्तर है .मन आहत हो गया.......

नौकरी ज्वाइन कर ली. वहाँ वो सुविधायें तो नहीं, लेकिन सुकून अवश्य था.

जिंदगी एक घुमावदार पगडंडी है, जो कभी दुःखों के कंटीले रास्ते पार करते-करते लहुलुहान हो जाती है. तो कभी प्यार के सपाट रास्ते पर दौड़ने लगती है. इन रास्तों पर चलते हुए, कितने ही पड़ावों पर गिरते-पड़ते हम आगे बढ़ते ही जाते हैं.

ऐसे में 'वह' खुशबू के झोंके की तरह मेरे जीवन में आया. वो भी शिक्षक है. उसकी पत्नी की हालत डिलीवरी के समय बिगड़ गई थी. फिर न बच्चा और न उसे बचाया जा सका. उसका यह सब बताना मुझे उसके और करीब ले आया.

उसकी बातें मुझे अनोखी दुनियाँ की तरफ खींचने लगती हैं. शायद मन ने सालों से ऐसा प्यार नहीं जाना था. मेरे एक बोल को सुन उसकी मिठास में खोने वाला अमर, और कहाँ पहली ही रात कंठ तक अपने को शराब में तर कर बात करने वाला नितिन. मन तौलने लगता. अमर जरूर किसी जनम का बिछुड़ा नेह है. मन को जितना पीछे धकेलना चाहती उतनी ही तेजी से वह आगे बढ़ता .

हमारी सामाजिक पृष्ठभूमि पर यह प्यार का बीज कैसे पनप सकता था. कुछ साहस का अभाव, कुछ परिवार का भय, सबसे बढ़कर ये कि मैं किसी की पत्नी हूँ. ये उचित नहीं है मेरे लिये. मेरे पैर अभी जमे नहीं थे. इनको पहले मजबूती से टिकाना ज्यादा अहम था.

ऐसे में बचकाना ही सही किंतु दृढ़ फैसला किया मैंने. अमर को डेढ़ वर्ष तक मेरा इंतज़ार करना होगा. उसके बाद जब भी आकर हाथ बढ़ाएगा मैं थाम उसके साथ हो लूँगी. इसके पीछे यही मंशा थी कि शायद नितिन सुधर जाये, उसे अपनी भूल का एहसास हो जाये . दूसरे अमर अगर सचमुच मुझे प्यार करता है, तो मेरा इंतज़ार करेगा . अन्यथा अपनी राह चुन लेगा. उसको मेरे इस फैसले पर कोई आपत्ति नहीं थी.

लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ नितिन की तरफ से केवल तलाक का नोटिस आया.

जिसको ईश्वर के सामने अग्नि को साक्षी मान सात फेरे लिये थे, जब उसने त्याग दिया तो फिर अमर ने तो बगैर पवित्र गवाहों के, अभी सिर्फ अपनाने की बात कही है, क्या पता वो भी इरादा बदल ले. जल्दी किसी पर विश्वास उपजता ही न था. नितिन ने मेरे विश्वास की नींव हिला दी थी.

पता नहीं उसने ये वक्त कैसे गुजारा. मेरे लिए भी ये समय एक सदी से कम नहीं था. अकेली औरत, वो भी परित्यक्ता , जिसका मायका भी पराया हो तो वो क्या करे ? दुनिया दोष उसी में ढूंढती है. पुरुष वर्ग तो छोड़ो नारी भी उसे ही दोषी मानती है.

मेरा तप पूर्ण हो चुका है. अमर मुझसे शादी करना चाहता है. मेरे सुख-दुःख का भागीदार बनना चाहता है. शेष जीवन मैं उसके प्यार की छाँव में गुजारना चाहती हूँ. मैं मन से तन के रिश्तों को जीना चाहती हूँ. बोलो प्रिया 'मैं गलत तो नहीं करने जा रही.'

नहीं शशि -तुम अपनी जगह बिल्कुल सही हो . चाहकर भी मैं उसे नहीं बता पायी कि नितिन ने दूसरा विवाह कर लिया है .

एक बार मायके से विदा हु ईथी, आज जब मायका नहीं रहा तू मुझे विदा कर दे. मेरा अब तेरे सिवाय है ही कौन. कह उसकी हँसी भी दुःख से भींग गई थी. रोके से भी मेरे आँसू फिर नहीं रुक पाये.

उसके मना करने पर भी मैं जबर्दस्ती उसे स्टेशन छोड़ने गई. ये वादा लिया कि अगली बार वो अमर के साथ आयेगी. वापस लौटने पर मन उदास हो गया. शशि ने वाकई बहु तत्रास झेला है सिर्फ अकेले.

याद आया सदा हँसकर कहने वाली--" समथिंग इज बेटर देन नथिंग " क्या शशि पहले ही इसको जान गयी थी।

अर्चना मिश्र

भोपाल

कहानी

इलाज़

आज आपके फकीरचन्द ने एक और आदमी मार डाला ' मिश्रा जी जब भी आते हैं ऐसा ही कोई विलक्षण जुमला बोलकर घर में इंट्री करते हैं। मैंने मुस्कराते हुए पूछा-'किसे मार दिया यार !'

''वो धर्मपुरा के किसान की बेटी थी। ...बिना मर्ज पहचाने इंजेक्शन भोंक दिया उसे और बोतल चढ़ा दी। राम जाने कोई ''एयर बबल'' आ गया, या इंजेक्शन का री-एक्शन हुआ कि बैंच पर लेटे-लेटे चल बसी बेचारी लड़की।'' मासूम चेहरा बनाये मिश्रा जी के चेहरे पर बिषाद की रेखाएं गहरी थी। बेटियों का जिक्र आते वक्त वे बहुत भावुक हो जाते हैं, आखिर पैंतालीस की उमर में बेटी पाई है उन्होंने, सो बेटियों के मुद्दे पर कुछ ज्यादा ही संवेदनशील हैं।

'चलो, चलके तमाशा देखते हैं ' मैं यकायक उठ खड़ा हुआ तो मिश्रा जी ने लानत भरे स्वर में रोका मुझेे, ' ये बताओ, उस झोलाझाप डॉक्टर से तुम्हारी इतनी ज्यादा सहानुभूति क्यों है ?'

सदा की तरह मेरा जबाब था 'वो मेरा फेमिली डॉक्टर है यार ।'

मिश्रा जी फिर उलाहना दे रहे थे 'तुम पढ़े-लिखे आदमी हो और जब इस शहर में अच्छे-खासे तालीमयाफ्ता डॉक्टर मौजूद हैं तो तुम नीम-हकीम के चक्कर में काहे को पड़ते हो? देखना किसी दिन नुक्सान उठाओगे।''

मैंने बात काटी उनकी , ' डिग्री भले न हो, लेकिन उसे हजारों मरीजों के इलाज का अनुभव है यार, खैर, चलो वहाँ देखते हैं क्या हो रहा है। मैं पूछना चाहता हूं कि आखिर क्या अपराध है उसका?'

वे बोले 'आज की घटना थोड़ी है। कल हो चुका सब कुछ। मैंने तो अखबार में पढ़ा है अभी सुबह-सुबह। अब क्या रखा है वहाँ। '

मैं शांत हो बैठ गया। अब मिश्रा जी बता रहे थे कि दिल्ली में स्वास्थ्य विभाग बाकायदा एक अभियान चला कर बिना मेडीकल-डिग्री वाले डॉक्टरों के खिलाफ कार्यवाही कर रहा है और वे चाहते हैं कि हमारे यहाँ भी ऐसा अभियान चलाया जाये। ऐसा न करने पर वे सरकार को कोसने लगे।

...कुछ देर बाद मिश्रा जी के जाते ही मैं डॉक्टर फकीर चंद के क्लीनिक पर था। मुझे उम्मीद थी कि तीनों दुकानों में ताले जड़े होंगे; लेकिन ऐसा न था तीनों दरवाजे खुले थे, अलबत्ता फकीरचंद नहीं थे वहाँ। मरीज भी न था कोई। कम्पाउन्डर बैठे हुए थे चारों। मुझे नमस्ते किया एक किशोर वय के कम्पाउन्डर ने, सो मैंने पूछा ‘‘कहाँ है डॉक्टर साहब ?’’

‘पता नहीं ! मोहन भैया के साथ गए है कहीं ? क्यों कोई दवा लेना है क्या आपको ?’

मैं मुस्कराया ‘अब ये लड़के भी दवाई दारू देने लगे हैं जिनका मालिक खुद बिना लायसंस का डॉक्टर है-झोला-छाप !’

इंकार में सिर हिलाता मैं लौट आया था। पता नहीं, क्या हो रहा होगा बेचारे फकीरचंद के साथ ? अब थाने जाकर देखना तो ठीक न होगा.....फिर वहां अपना परिचित भी नहीं कोई, और दारोगा भी पूछेगा कि आप कस्बे के एक जिम्मेदार अफसर हो, आप काहे चक्कर में पढ़ते हो इस हत्यारे डॉक्टर के। हाँ, दारोगा उसे हत्यारा ही कहेगा। पुलिस की भी मजबूरी है। उसके पास न ज्यादा ज्ञान है न आदमी के भांपने की क्षमता। बहुत सिमटा हुआ दायरा है उसका। छोटा शब्दकोश है उसका। गिने-चुने खाने है उसके दिमाग में, जिसमें वो आदमियों को पटक देते हैं-हत्यारा, मुल्ज़िम, फरियादी, हिस्ट्रीशीटर, महात्मा और वकील। हजारों पेशों और लाखों मनोवृत्ति वाले इस समाज के लोगों को देखने की क्षमता नहीं है उनके पास। फुरसत भी नहीं है। सत्य कहा जाय तो जरूरत भी नहीं। चल रहा है पिछले शताधिक वर्षों से ऐसा ही ढर्रा और कहीं कोई दिक्कत नहीं है, सो वे काहे को बदलेेंगे।

उत्सुकता में मैंने अखबार पलटा.......देखूं तो कि फकीरचंद के मामले में क्या छपा है। प्रदेश स्तरीय एक अखबार में फोटो था फकीरचंद का जिसमें वे पुलिस लॉक-अप में नीचा सिर बैठे थे। मुझे दया आई।

यूं डॉक्टर फकीरचंद मुझे सदा से दयनीय लगते रहे हैं। ये बात अलग है कि मुझे भले ही लगते हो, लेकिन वे खुद को कभी दयनीय महसूस नहीं करते। अगर ऐसा प्रकरण होता कभी-कभार, ...और उनका कोई शुभचिन्तक उन्हें ज़लालत के लिए टोकता। वो बेधड़क जबाब देते ‘ कैसी ज़लालत ? मैंने क्या गबन कर लिया किसी सरकारी धन का ? किसी से रिश्वत मांगी क्या ? किसी की बहन बेटी को छेड़ा क्या ? मैं तो समाज का सेवक हूँ भाई साहब। मजदूरी करता हूँ ’....और टोकने वाला हतप्रभ हो उन्हें भकुआकर ताकता रह जाता। गजब का आत्म विश्वास था उनमें। एक बार मैंने उनसे पूछा ‘ आप ये जो बिना मेडीकल-डिग्री के मरीजों का इलाज़ करते हैं , इसके लिए मन में कहीं संकोच नहीं होता कि कोई गैर-कानूनी काम कर रहे हो?’

हैरानी भरे स्वर में वे मुझसे पूछ रहे थे ‘ गैर-कानूनी काम काहे का भाई साहब? मेरे पास आर0एम0पी0 का सर्टिफिकेट है। मैं कोई ओझा, गुनिया या तांत्रिक और मोघिया थोड़ी हूं कि वगैर किसी जानकारी के मरीजों के स्वास्थ्य से खेल रहा होंऊं। मैं तो समाज की सेवा कर रहा हूं, इस काम को बहुतमेहनत से सीखा है मैने और वो भी एक हुनरमंदडॉक्टर की सोहबत में रहकर।’

‘ आप को ये डॉक्टरी का हुनरकैसे मिला?’ मैंने पूछा तो वे मुझे बताते चले गए थे...।

.....देश के विभाजन के वक्त वे दस साल के थे। अपना घर-बार छोड़कर पाकिस्तान से भागे उनके पिता जब भारतवर्श आये थे तो बिलकुल फांकाकसी की हालत में थे। सिवाय माँ के पहने सुहाग चिन्ह के, एक भी जेवर न था उनके पास। ऐसे तमाम शरणार्थी आये थे उस भागमभाग के दौर में। रियासत के ज़माने के खाली भवनों पर शरणार्थियों ने अपने ठिकाने बनाये और हर आदमी अपने लायक रोजगार खोजने लगा। हमारे कस्बे के लोगों को ताज्जुब था कि वे सब के सब धंधे की तलाश में थे-किसी सरकारी या प्राइवेट नोैकरी की इच्छा तो किसी को न थी।

कस्बा अजीब-सी कशमकश में था, लोग एक-दूसरे से पूछते थे कि इतने लोगों के आने से कस्बे का जीवन तो प्रभावित नहीं हो जाएगा? जमे-जमाये व्यापारियों को चिन्ता थी कि उनका धंधा तो चौपट नहीं कर देंगे ये लोग धंधे में उतर के..। दर्जियों को लग रहा था कि इनकी औरतें कपड़े सिलने की मजदूरी तो नहीं छीन लेगी उनसे..

लेकिन वे लोग जल्दी ही कस्बे की जिन्दगी में शामिल हो गये थे, सोसायटी का विशेष हिस्सा बनके। बेशक कुछ धंधों पर असर पड़ा। किराना, कपड़ा, मनिहारी सामान और जूतों के व्यापार में पूरी तैयारी से कूद पड़े थे वे और आसपास के कस्बों के बाजार पर छा गये थे। वे सिर्फ दो धंधों से दूर थे सराफा और गल्ला व्यापार से। कारण साफ था कि इन दोनों धंधों में व्यापारी की साख, पुराने रिश्तों का बड़ा हाथ होता है। फिर दोनों ही धंधों में उधारी भी ज्यादा होती है। जिसके लिए पूंजी की व्यवस्था शरणार्थियों के पास नहीं थी।

ऐसे में फकीरचंद के पिता ने महसूस किया कि वे कस्बे की तुलना में गांव मंे ठीक रहेंगे सो उन्होंने कस्बे से बीस किलोमीटर दूर के एक विकसित गांव को अपना लक्ष्य बनाया और वे अण्डाबच्चा से उस गांव जा पहुंचेथे। वहीं अपनी किराना-कपड़ा की छोटी सी दुकान खोल ली थी उन्होंने।

बालक फकीरचंद का स्कूल में एडमीशन हुआ।वहां से लौटकर दुकान पर बैठने की जिम्मेदारी डाल दी उस पर पिता ने। लेकिन फकीरचंद नमक, मिर्च और दाल मसाले बेचने में अपने आपको असहज पाते थे, सो वे स्कूल से सीधे दुकान पर नहीं जाते थे, बल्कि स्कूल के पास बने सरकारी अस्पताल में जाकर बैठ जाते थे। जहां के लोकप्रिय डॉक्टर सिंह साहब को फकीरचंद के पुराने देश बारे में दिलचस्पी थी और फकीरचंद से वे वहां की बातें रूचि लेकर सुना करते थे। कभी वे पशु चिकित्सालय चले जाते, जहाँ के डॉक्टरों का उन्हंे फेंककर ढोर के पुट्ठों में इंजेक्शन लगाना बहुतमजेदार लगता था।

धीरे-धीरे वे अस्पताल का ही एक हिस्सा बनते चले गए। दस साल के फकीरचंद ने पहली कक्षा में प्रवेश लिया था तब अस्पताल में जाना शुरू किया और जब वे दसवीं में पहुंचेतब तक मरीज को इंजेक्शन लगाना, ड्रिप चढ़ाना तक सीख चुके थे । थर्मामीटर से बुखार लेना और कटे-फटे की ड्रेसिंग व स्ट्रेंिचंग तो उनके लिए बहुतसरल काम था। पशु चिकित्सालय में जाते तो वहाँ के डॉक्टरों से अनुमति लेकर कभीकभार वे भी ढोरों पर फेंककर इंजेक्शन लगाने की कला में अपना हाथ आजमाने लगे।

दसवें क्लास में वे बुरी तरह फेल हु ए।बाप उन पर जबर्दस्त खफा थे-दुकान पर आता नहीं और मन लगाकर पढ़ता नहीं है, अब क्या करेगा तू? डॉक्टरी करेगा! आगे तो पढ़ाऊँगा नहीं कतई। जाओ, जो मन में आये सो करो।

........और वे सहसा डॉक्टरी करने का मन मना बैठे थे। पिता की दुकान पर छोटा भाई बैठता था सो वहाँ की चिन्ता न थी और फिलहाल भोजन की भी फ्रिक नहीं, सो देखेंगे कि भगवान क्या कराता है। तीन दिन तक लगातर कॉपी लेकर बैठे फकीरचंद ने सरकारी डॉक्टर सिंह साहब से लगभग सौ तरह की बीमारियों के नुस्खे लिख लिये थे। एंटीवायटिक, एंटीएलर्जिक और एंटीवायरस के गुण विस्तार से लिखे थे उन्होने।

''फकीर क्लीनिक'' के नाम से गाँव के मोटर-स्टैण्ड के पास एक छोटी सी दुकान खुली तो गाँव वाले आल्हादित थे, ...बल्कि उत्सुक भी कि दस साल से सरकारी अस्पताल में काम सीख रहा यह बिना पढ़ा डॉक्टर कैसे इलाज कर पाता है भला।

शुरू में दवाई के रूप में केवल गोली-कॅप्सूल देते रहे वे मरीजों को। ...जख्मी लोगों की मलहम पट्टी करते रहे मुफ्त में। उनके इलाज में ज्यादातर लोगों का फीस और दवाई का बिल बनता था कुल मिलाकर दो रूपये, सो एक बार आजमा लेने के ख्याल से भी मरीज उनके पास चले आते। हाथ में जस था सो जिसे एक बार दवाई देते वो ठीक होकर उन्हें दुआयें देता लौटता। एक खास सावधानी रखी उन्होंने कि गम्भीर बीमारी में वे कतई हाथ न डालते थे।

एक तो सस्ता इलाज और ऊपर से टाइम-बेटाइम उनकी उपलब्धता ने खासा लोकप्रिय बना डाला उन्हें- सरकारी अस्पताल का तो समय भी तय था और सारी सरकारी छुट्टियों में बंद रहने की मजबूरी भी। बिना किसी प्रचार के गाँव से बाहर भी उनकी ख्याति फैलने लगी।

धीरे-धीरे उन्होंने इंजेक्शन लगाना शुरू किया। वे मरीज की बांह का निशाना ले फेंक कर, इंजेक्शन लगाते थे, ...हाँ पशु चिकित्सालय में सीखा हु नरवे इंसानों पर अजमाने लगे तो मरीज उन पर सौ जान से फिदा हो उठे। दर्द का पता भी न लगता और इंजेक्शन की सुई बांह या पुट्ठे के गद्दर मसल्स में जा धंसती फिर बिना दर्द के दवा भी शरीर में प्रविष्ट हो जाती। लोग उनके इंजेक्शन लगाने की अदा को देखने किसी न किसी बहाने उनके क्लीनिक चले आते और

मंत्रमुग्ध होकर देखते कि छोटे छोटे बच्चे भी बिना ऊ... आ.... के डॉक्टर फकीरचंद से इंजेक्शन लगवा रहे हैं।

दुकान चल निकली तो फकीरचंद ने शिक्षा पर ध्यान दिया। उन्होने प्राइवेट तौर पर मैट्रिक का फॉर्म भरा और पास भी हु ए।फिर इंटर किया और प्राइवेट ही बी0ए0 करके आयुर्वेद रत्न की परीक्षा पास कर ली। इस परीक्षा के बाद वे प्रदेश सरकार के स्वास्थ्य विभाग में रजिस्टर्ड-मेडीकल-प्रेक्टिशनर बनने योग्य हो चुके थे, और उन्होंने अपना रजिस्टेªशन करा भी लिया। इस बीच पिता ने उनका ब्याह किया वे तीन बेटियों और एक छोटे से बेटा के पिता बन गये थे।

अब उनके क्लीनिक में हर तरह से इलाज होने लगा था। कटी त्वचा पर टांके लगते। इंजेक्शन लगते। बोतल चढ़ती। ब्लड-प्रेशर लिया जाता। वे कान में आला लगाकर बड़ी गंभीरता से मरीज की बीमारी सुनते, नब्ज पकड़ते और दवाई लिखना शुरू कर देते। हजारों मरीज ठीक किए थे उन्होंने और अनुभव के मामले में वे अच्छे खासे एम.डी.से बढ़कर थे।

....कि एक साथ दो घटनाऐं घटीं। पिता का दिवाला निकला और उनको क्लीनिक बन्द करना पड़ा। इलाके में पिछले दो साल से पानी नहीं बरसा था तो खस्ताहाल किसान ग्राहकों ने पिछले एक माह से फकीरचंद के पिता की दुकान से सौदा-सट्टा लेना न केवल कम कर दिया बल्कि पुरानी बकाया चुकाने के लिए कतई हाथ जोड़ लिए थे तो उनके पिता की आँखों के आगे अंधेरा छा गया था। लाखों रूपया उधार था किसानों पर उनका और सब डूबा तो वे सड़क पर थे। एक दिन उनके सीने में दर्द हु आऔर वे दुकान बंद कर घर चले गये। ठीक उसी दिन फकीरचंद के क्लीनिक पर अपनी मृतप्राय बच्ची लेकर आये एक किसान को डॉक्टर वापिस लौैटाने लगे तो वह बोला था कि हम तो उसे मरी ही मान रहे हैं तुम्हारे हाथ के जस से यह जी जाये तो इसका भाग्य। बुझे मन से फकीरचन्द ने इलाज शरू किया और इंजेक्शन लगाकर ड्रिप लगाई ही थी कि बच्ची ने आँखे नटेर दी। सहसा बच्ची के बाप की नजरें बदल गई। वह चीख चीख कर अपनी मासूम बेटी को मार डालने के लिए फकीरचंद को दोशी ठहराने लगा और डॉक्टर को काटो तो खून नहीं। गाँव के लोग तमाशा देखने जुटने लगे ठीक उसी वक्त घर से खबर आई कि पिता नहीं रहे। हां, पिता को हार्ट-अटैक हु आथा और वे घर पहुं चतेही खत्म हो गये थे।

.......और यह समाचार सुन क्लिनिक बंद करके पिता की क्रिया के लिए घर लौट रहे फकीरचंद पर हमला हु आ।वे हाथ जोड़ते रहे माफी मांगते रहे, लेकिन लोगों को जाने कब कब की लगी बुझाना थी सो उस दिन बुरी तरह पिटे वे।

पिता की लाश को जलाकर लौटे तो घर पर मृतक बच्ची का बाप बैठा था दुबारा झगड़ने को। आखिरकार बिना किसी गलती के पांच हजार डांड़ भरके छूट सके और कान पकड़े उन्होंने उस गांव से। भैया मोहन ने दुकान बंद कर दी और उन्होंने क्लीनिक। दोनों कस्बे में चले आये जहाँ वे फिर से ‘डॉक्टर फकीरचंद’ का बोर्ड लटका कर बैठ गए थे और भाई मोहन पास की दुकान में नया मेडीकल स्टोर खोल कर।

गाँव में सीखा इलाज का हु नर खूब काम आया। कम पैसा। कम दवाई। इंजेक्शन लगाने का दर्दहीन तरीका। उसके साथ कई खासियतें थीं उनकी, हर आदमी से भाईसाहब और स्त्रियों से बहनजी कहना, बच्चों को बिस्कुट के पैकेट, अपंग भिखारियों को भरपेट भोजन और गरीब मरीज का मुफ्त इलाज करने के गुण ने लोकप्रिय कर दिया, ...और वे फिर से मरीजों से घिरने लगे । ज्यादा मरीज आये सो रूपया भी ज्यादा आने लगा और वे इसे ठीक ढंग से इनवेस्ट भी करने लगे। पन्द्रह साल के भीतर उन्होंने न केवल अपना मकान बनाया, दुकान खरीदी, बल्कि अपने छोटे भाई और तीनों बेटियों का ब्याह भी कर डाला था। बेटे ने बारहवां दर्जा पास किया और जब मेडीकल कॉलेज के प्रवेश की परीक्षा में सफलता नहीं पा सका तो उन्होंने खूब भाग-दौड़ करके उसे सोवियत संघ के किसी देश के मेडीकल कॉलेज में प्रवेश दिला दिया था।

सब कुछ ठीक चल रहा था कि उन्हें दूसरी बार अपयश मिला। बस स्टैण्ड पर खड़ी बस में किसी यात्री को हार्ट-अटैक हु आ जिसे उठाकर लोग उनके यहां ले आये थे। वे भला क्या जानें इस उलझाऊ बीमारी का इलाज? कुछ करने के नाम पर वे ब्लड प्रेशर ले रहे थे कि मरीज ने दम तोड़ दिया। वे फिर हैरान थे- हे भगवान बैठे ठाले क्या मुसीबत आ गई।

मरीज बाहर का था पुलिस ने उसकी जेब से डायरी निकालकर उसके घर खबर की और डॉक्टर को इतनी भर सजा दी कि वे लाश को मरीज के घर पहुँचानेका बन्दोवस्त करें।

फिर दो ऐसे मरीज मरे उनके यहाँ जिनकी मौत में उनका कतई हाथ न था, लेकिन हर बार उनके खिलाफ पुलिस रिपोर्ट होती और वे दरोगा सिपाही के हाथ जोड़ते नजर आते। जेब ढीली होती सो अलग।

उनके इलाज का मैं जबरदस्त फैन था। सर्दी जुखाम हो या लू , बुखार हो या बदहजमी, मैं उनके पास से छै खुराक दवायें लाता और टनाटन हो जाता।

कस्बे के इर्द-गिर्द के पच्चीस-तीस गांव से मरीज आते थे उनके पास। वे जितना कमाते उतना दान पुण्य भी कर लेते। ...सावन के महीने में एक विशाल भण्डारा कराते और पांच हजार लोगों को भोजन कराते। ...हर साल एक कन्या का विवाह का खर्च उठाते । ...भूले-भटके परेशान लोगों को आर्थिक सहायता करते। पत्रकारों को भरपूर विज्ञापन देते।

लेकिन बहुतकृतघ्न है दुनिया ! इस बार मरीज की मौत क्या हुईसारे पत्रकार उनके खिलाफ थे। लोगों की मांग थी कि बिना डिग्री और लायसेंस के इलाज करने के जुर्म में उनके खिलाफ कार्यवाही हो। कुछ लोगों का बस चलता तो वे उन्हें फांसी पर लटकवा देते।

मिश्राजी अगले दिन पूरी बहस के मूड में थे‘कल आप को वो गैर लायसंसी डॉक्टर बड़ा धनवंतरी लग रहा था, पूछ रहे थे कि क्या अपराध है उसका? इससे बड़ा और क्या अपराध होगा उसका कि ना उसने शरीर विज्ञान पढ़ा, न भेशज विज्ञान! न उसे शरीर के चयापचय का ज्ञान है, न ही नाक-कान-गला और न्यूरो सिस्टम का। फिर भी धड़ल्ले से इलाज कर रहा है क्लीनिक खोल कर, मानो ये भी एक दुकानदारी हो गयी हो, ... अरे भाई पूरी दुनिया में कानून है कि मनुश्य का इलाज वही करेगा जो मनुश्य के शरीर, बीमारियो ंऔर भेशज विज्ञान का बाकायदा पूरा कोर्स कर चुका हो। तुम्हे शायद पता होगा कि विदेशों से लौटने वाले इन चिकित्सा-स्नातकों को भी हमारे देश में मेडीकल काउंसिल का एक इग्जाम देना होगा तभी वे प्रेक्टिस कर पायेंगे।’

‘...और ये जो तमान वैध लोग, यूनानी चिकित्सक, होम्योपैथी के दवा सलाहकार और यहां तक कि मोधिया लोग खुले आम हर बीमारी का इलाज कर रहे हैं उनके बारे में कोई कानून है या नहीं!’ मैं खुले आम कुतर्क पर उतर आया था।

‘कानून तो सबके लिए है , बस लागू करने वालो ंकी कमी है।’ मिश्राजी व्यवस्था पर सारी जवाबदारी थोप रहे थे जो आज हरेक की आदत में शामिल है और मैं समझ रहा था कि भले ही जवाबदारी किसी पर थोप रहे हों लेकिनगलत नहीं कह रहे थे। लेकिन मैं भी अपनी नाक कैसे नीची करा सकता था सो बाकयदा बहस में उलझा रहा।

....कुछ देर बार मिश्रा जी चले गये भुनभुनाते हु ए।

जमानत पर रिहा होकर डॉक्टर फकीरचंद फिर से अपने क्लीनिक पर थे।

इस बार वे मुकम्मल बन्दोबस्त करने के मूड में नजर आ रहे थे। उन्होने आयुर्वेद में बैचलर डिग्री लिए एक डॉक्टर को अपना पार्टनर बना लिया था शायद, क्योंकि क्लीनिक पर उस दूसरे डॉक्टर के नाम की तख्ती लटक गई थी। ....लेकिन ऐसा ज्यादा दिन नहीं चला बस कुछ दिन बी0ए0एम0एस0 वाले इन डॉक्टर साहब की तख्ती गायब नजर आई हम सबको। फिर कुछ दिन बाद उनकी बदली और एक पैथालॉजिस्ट की तख्ती लटकी। .... और सप्ताह भर के भीतर वह भी हट गई।

और इन दिनों उनके क्लीनिक में दीवाल पर किसी एम0बी0बी0एस0 डॉक्टर के नाम की डिग्री लटकी हु ईहै । मुख्या काउण्टर पर उन डॉक्टर साहब के नाम की एक बडी और भव्य कुर्सी रखी हु ईहै। जबकि मायूस फकीरचंद महज कम्पाउंडर के रूप में काम करते दिखते हैं । हम सबको इंतजार है किसी नई घटना का... देखिये क्या होता है !

जब तक उनका बेटा सोवियत रूस से अलग हु एउस नामालूम से देश से डिग्री लेकर नहीं लौटता डॉक्टर फकीरचंद को यही सब भुगतना है- और शायद हम सबको भी। अब जनाब मनुश्य शरीर है तो बीमारियां है, और बीमारी है तो इलाज भी जरूरी है न।

राजनारायण बोहरे-देवास

साक्षात्कार -माहेश्वर तिवारी

कविता फिर लौटेगी मंचों पर गीत के रूप में - माहेश्वर तिवारी

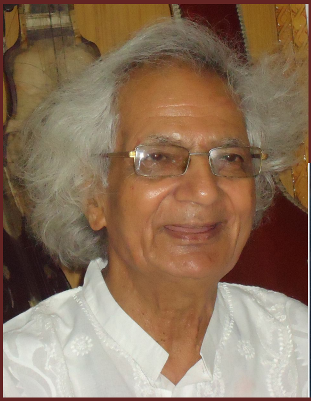
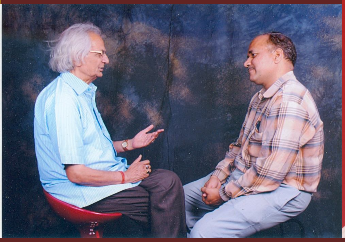

हिन्दी साहित्य में जब-जब नवगीत की संवेदना और युगीन संदर्भों के साथ-साथ भाषागत सहजता व आंचलिक मिठास की चर्चा होती है, हिन्दी नवगीत के एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर के सृजनात्मक उल्लेख के बिना न तो वह पूर्ण होती है और ना ही उस चर्चा का कोई महत्व रहता है | हिन्दी नवगीत के वह महत्वपूर्ण और अद्‌वितीय हस्ताक्षर श्री माहेश्वर तिवारी हैं | 22 जुलाई 1939 को बस्ती (उ.प्र.) में जन्मे श्री तिवारी की अब तक 4 नवगीत कृतियों - 'हरसिंगार कोई तो हो' , 'नदी का अकेलापन', 'सच की कोई शर्त नहीं' और 'फूल आए हैं कनेरों में' के अतिरिक्त नवगीत की कई पांडुलिपियाँ प्रकाशन की प्रतीक्षा में हैं | हिन्दी गीत-नवगीत के संदर्भ में श्री तिवारी से महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर बातचीत की युवा गीतकवि योगेन्द्र वर्मा 'व्योम' ने -

व्योम : नवगीत आपकी दृष्टि में क्या है और इसकी क्या-क्या शर्तें व मर्यादायें हैं ?

मा.ति. : नवगीत भारतीयता से जुड़ा और आधुनिकता तथा वैज्ञानिक बोध से जुड़ा वह काव्य-रूप हैजो छायावादोत्तर गीत-धारा से, गेयत्व को छोड़कर शेष सभी रूपों में आधुनिक मनुष्य का गीत है | इसमें प्रेम के नाम पर न तो मध्यकालीन परकीया भाव है और न कुहासे से भरी

कल्पनाशीलता | इसमें सजग सामाजिक बोध और घर-आँगन का विश्वसनीय चेहरा है |

आधुनिकता से उपजीं विकृतियों के प्रति भी चौकन्नी जागरुकता, राजनीतिक, आर्थिक

विसंगतियों के प्रति एक प्रतिपक्ष का भाव तो इसमें है ही, सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें

भारतीय संस्कृति और देशी ज़मीन के प्रति गहरे सरोकार भी हैं । यह समकालीन अन्य तमाम रूपों की तरह आयातित काव्य-रूप नहीं है । यह निजत्व से जुड़ा होकर भी उस आत्माभिव्यक्ति से मुक्त है जो कभी-कभी कविता के धरातल से खिसककर डायरी के रूप में सामने आ जाता है ।

व्योम : आप नवगीत का आरम्भ कहाँ से मानते हैं, महाप्राण निराला से या उससे भी पहले ?

मा.ति.: नवगीत की पहली आहट निराला के गीतों में ही मिलती है । गीत की नई भाषा और शिल्प की नई बुनावट सबसे पहले महाप्राण निराला में ही मिलती है । यह ध्यान देने की बात है कि गीत ही नहीं, प्रयोगवादी और कालान्तर में नई कविता के नाम से अभिहित समकालीन कविता के प्रथम प्रयोक्ता भी निराला ही हैं । कुछ लोग नवगीत का आरंभ छठे दशक से मानने के आग्रही हैं लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि गंगा को उत्तरकाशी या उससे आगे मानने की अपेक्षा गंगोत्री से ही माना जाना चाहिए क्योंकि गंगोत्री से निकलने के पश्चात गंगा भागीरथी, अलकनंदा आदि नामों से जगह-जगह जानी जाती है लेकिन उत्स तो गंगोत्री ही है, उसी तरह निराला को नवगीत का प्रथम पुरुष माना जाना चाहिए । डॉ. शम्भूनाथ सिंह, वीरेन्द्र मिश्र जैसे नवगीत कवि निराला को ही नवगीत का पुरोधा मानने के आग्रही रहे हैं । नवगीत शब्द का पहली बार प्रयोग राजेन्द्रप्रसाद सिंह ने स्वयं द्वारा संपादित गीत संकलन 'गीतांगिनी' की भूमिका में लिखित रूप से किया लेकिन वह भी इसके प्रथमपुरुष नहीं स्वीकारे जा सकते हैं । इस सारे विमर्श के बाद निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि नवगीत का आरंभ निराला से ही हु आ। अपनी प्रसिद्ध सरस्वती वंदना में निराला ने ही 'नवगति, नवलय, ताल, छंद नव' की बात का सबसे पहले उन्होंने ही उद्घोष किया ।

व्योम : कहा जाता है कि नवगीत यथार्थ के कठोर धरातल पर खड़ा है तथा उसमें व्यवस्था विरोध के साथ-साथ वैश्वीकरण और बाज़ारवाद के विरुद्ध स्वर भी मुखर हु एहैं लेकिन भविष्य के गर्भ में झाँकने की कोशिशें नवगीत में उतनी नहीं हु ईं क्यों ?

मा.ति.: कोई भी रचना अपनी समकालीनता से जुड़ी होती है । वह अपने समय के यथार्थ को ही अभिव्यक्ति देती है । वह निष्कर्ष नहीं देती, वर्तमान की विसंगतियों, त्रासदियों को अपनी

अंतर्वस्तु में शामिलकर पाठकों को भविष्य के संकेत देती है । सौन्दर्यशास्त्र के नए मानक गढ़ती है । सामाजिक बदलावों की ज़रूरतों की ओर प्रच्छन्न संकेत करती है । इससे आगे सोचना उसके पाठकों और उसके समाज का दायित्व बनता है । यह सभी बड़े रचनाकार और उनका सृजन करता है । गीत महाकाव्य नहीं है कि उससे भविष्य के संकेत ढूँढे जाएँ। वैश्वीकरण और बढ़ते बाज़ारवाद के ख़तरों की ओर वह इंगित करता है । इससे बचाव और विकल्पों की तलाश उसका काम नहीं है । जब भारतेन्दु हरिश्चंद्र 'आओ सब मिलकर रोबहु भाई/हा-हा भारत दुर्दशा न देखी जाई' या निराला की 'राम की शक्तिपूजा' में जो अंतर्वस्तु है वह सिर्फ अपने समय को ही अपनी अभिव्यक्ति में समेटती है, भविष्य की ओर संकेत दूसरी तरह की कविताओं में ढूँढा जा सकता है, गीत में नहीं ।

व्योम : आपका सबसे प्रथम् नवगीत कौन सा था तथा कब और कहाँ प्रकाशित हु आ?

मा.ति.: मैंने जिस समय गीत लेखन आरंभ किया उस समय 'नवगीत' शब्द चर्चा में नहीं था। तार-सप्तक के कवियों ने तथा उससे बाहर के प्रयोगवादी व नई कविता के कवियों ने जो गीत लिखे उन्हें कुछ समय तक नई कविता के गीत और नया गीत के नाम से जाना-पहचाना जाता रहा। सन् 1960 के बाद नए गीत कवियों की रचनाओं के लिए 'नवगीत' शब्द केन्द्र में आया। मेरे जिस गीत को लेकर मुझे नवगीतकारों में शामिल किया गया, वह है - 'आओ हम धूप-वृक्ष काटें/इधर-उधर हल्कापन बाँटें'। यह गीत पहली बार वाराणसी से प्रकाशित 'मराल' पत्रिका में सन् 1964 में छपा और चर्चित हु आ।

व्योम:गीत से नवगीत तक की यात्रा में हिन्दी कविता ने कौन-कौन सी उपलब्धियाँ हासिल कीं ?

मा.ति. ः कई पड़ाव आए गीत से नवगीत तक की यात्रा में, गीत कभी प्रगीत बना, स्वच्छंदावादी गीत बना और फिर वह सन् साठ के बाद नवगीत बना। गीतों में प्रकृति-मनुष्य से अलग एक इकाई थी किन्तु नवगीत में वह सहचरी बन गई। भवानी प्रसाद मिश्र के गीत 'सतपुड़ा के घने जंगल/ऊँघते अनमने मंगल' और 'आज पानी गिर रहा है/घर नयन में तिर रहा है' जिस नए गीत की आहट देते हैं वह गीत से नवगीत के प्रस्थानक बिन्दु के रूप में स्वीकारा जा सकता है। इस अंतर को तत्कालीन 'नीरज' और वीरेन्द्र मिश्र के गीतों के माध्यम से भी जाँचा परखा जा सकता है। वीरेन्द्र मिश्र ने अपने पीड़ा वाले गीत में कहा है - 'पीर मेरी कर रही ग़मगीन मुझको/और उससे भी अधिक तेरे नयन का नीर रानी/और उससे भी अधिक हर पाँव की जंजीर रानी' जबकि नीरज लिख रहे थे - 'देखती ही न दर्पण रहो प्राण तुम/प्यार का यह मुहूरत निकल जाएगा'। गीत वैदिक ऋचाओं के रूप में उपजा और वह लोक जीवन तथा लोकमानस से होकर नवगीत तक आया। कुछ लोगों का मत है कि नवगीत नई कविता की अनुकृति से उपजा, यह मिथ्या भ्रम है। महाप्राण निराला की सरस्वतीवंदना में 'नव-गति, नव-लय, ताल छंद नव' ही नवगीत का बीजमंत्र कहा जा सकता है।

व्योम : स्व. डॉ.शम्भूनाथ सिंह द्वारा संपादित नवगीत दशक श्रंखला तथा नवगीत अर्द्धशती के संदर्भ में कहा जाता है कि इन ऐतिहासिक समवेत संकलनों में तत्कालीन कुछ महत्वपूर्ण नाम सम्मलित नहीं हो सके, इसकी क्या वज़ह रही ?

मा.ति.: यह बात बिल्कुल सच है कि नवगीत दशक तथा नवगीत अर्द्धशती में कुछ महत्वपूर्ण रचनाकार छोड़ दिए गए या छूट गए। ऐसा तार सप्तक, दूसरा सप्तक और तीसरा सप्तक

में भी हु आथा और पिछले दिनों साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित 'श्रेष्ठ गीत संचयन' में भी यह कमी पाई गई। ऐसा प्रायः संपादक की निजी रुचि और संकलनों की सीमाओं के कारण भी होता है। नवगीत दशक-एक के प्रकाशन के बाद स्व. ठाकुरप्रसाद सिंह ने सबसे पहले इस बात को लेकर एतराज किया था कि उसमें कुछ ऐसे नाम हैं जो नहीं होने चाहिए और कुछ ऐसे महत्वपूर्ण नाम हैं जो होने चाहिए थे। एक बात यह भी है कि नवगीत दशक के प्रकाशन की प्रक्रिया 1968 में ही आरंभ हो गई थी और उस समय मात्र

एक ही संकलन की योजना आर्थिक सहयोग के आधार पर तैयार हुई थी । उसमें कई नाम ऐसे थे जो बाद में दशकत्रयी में शामिल नहीं किए गए । उस संकलन की फ़ाइल संपादक की अपनी व्यस्तताओं और कुछ के आर्थिक सहयोग से इंकार कर देने के कारण फ़ाइलों के ढ़ेर में दबी रह गई । डॉ. सुरेश जब डॉ. शम्भूनाथ सिंह के निर्देशन में शोधकार्य में जुटे तो वह फाइल उनके हाथ लग गई तो डॉ. शम्भूनाथ जी से चर्चा उपरान्त तीन नवगीत दशकों के प्रकाशन की योजना बनी । इस योजना में मेरा नाम पहले दशक के रचनाकारों की सूची में था लेकिन जब आयुक्रम से चयन की बात आई तो मेरा नाम खिसककर दूसरे दशक में आ गया । बहरहाल स्व. राजेन्द्रप्रसाद सिंह, वीरेन्द्र मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर, शलभ श्रीराम सिंह जैसे प्रमुख लोगों का नाम दशक त्रयी में न होना हमारे लिए भी असहज कर देने वाला था । हमने अपने-अपने ढंग से अपनी आपत्तियाँ संपादक तक पहुँचायीं पर कोई सुनवाई नहीं हुई बल्कि स्व. ठाकुरप्रसाद सिंह तथा मुझे अपने एक लेख में डॉ. शंभूनाथजी ने नवगीत का शत्रु तक सिद्ध कर दिया लेकिन अपनी इस ग़लती का एहसास बाद में उन्हें भी हुआ और नवगीत अर्द्धशती में वीरेन्द्र मिश्र तथा शलभ श्रीराम सिंह को शामिल करने को वह तैयार थे किन्तु उन दोनों रचनाकारों की ओर से न तो कोई सकारात्मक उत्तर मिला और न रचनात्मक सहयोग । इससे नवगीत दशकों और नवगीत अर्द्धशती में एक अधूरापन तो रहा लेकिन इससे उनकी ऐतिहासिकता को नकारा नहीं जा सकता ।

व्योम: नवगीत को केन्द्र में रखकर काफी काम हुआ है, नवगीत दशक श्रृंखला के अतिरिक्त नवगीत और उसका युगबोध, शब्दपदी, धार पर हम आदि समवेत पुस्तकें प्रकाशित हुईं किन्तु नवगीत का सर्वमान्य एक पारिभाषिक चित्र प्रस्तुत करने के स्थान पर भ्रामक स्थितियाँ ज़रूर बनीं, आप क्या मानते हैं ?

मा.ति.: नवगीत को केन्द्र में रखकर नवगीत दशकों के बाद में आए कई समवेत संकलनों, जिनका ज़िक्र आपने किया है उससे भी पहले बासंती, रश्मि, कविता-64, वातायन, अंतराल, सांध्य मित्रा, नवगीत जैसी पत्रिकाओं के नवगीत विशेषांकों ने नवगीत को लेकर काफी काम किया। नवगीत की चर्चा करने वाले अक्सर इन महत्वपूर्ण प्रयासों को भूल जाते हैं या उनकी अनदेखी कर देते हैं । कालान्तर में आए पाँच जोड़ बाँसुरी, गीत जैसे समवेत संकलनों की ओर पता नहीं किन कारणों से उनका ध्यान नहीं जाता । विगत वर्षों में इस दिशा में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप दिनेश सिंह के संपादन में आई पत्रिका 'नए-पुराने' ने किया । रचना और विमर्श दोनों दृष्टियों से नए-पुराने के अंक एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ बन गए । आप जिस तरह की अपेक्षा करते हैं उसके लिए नवगीत का 'गोल्डन-ट्रेज़री' जैसा कोई संकलन आए तभी काम हो सकता है । नवगीत दशक, नवगीत अर्द्धशती, शब्दपदी, धार पर हम, नवगीत सप्तक आदि की सीमाओं और उनके संपादकों की निजी पसंद-नापसंद तथा नवगीत संबंधी संपादक की निजी अवधारणाएँ, रचनाकारों की आपसी टालमटोल आदि कई कारक हैं जो नवगीत को समग्रता के साथ प्रस्तुत करने में बाधक बनते हैं । दूसरी बात यह कि नवगीत गतिशील रचनाकर्म है, नित नए रचनाकार उसकी भूमि में प्रवेश करते हैं फिर उन सबको समेटना एक तटस्थतापूर्ण कठिन श्रम और भारी आर्थिक प्रबंधन की माँग करता है । क्या यह उन लोगों से संभव है जो स्वयँ अपने प्रस्तोता हैं और इस बात के आग्रही कि जो है वह उन्हीं से माना जाना चाहिए तथा उसके आगे-पीछे का सब व्यर्थ है । पिछले दिनों इसी तरह की एक आत्मकेन्द्रित घोषणा देश की राजधानी से भी हुई है । ऐसा कार्य या तो

दुराग्रहपूर्ण होता है या अल्पज्ञान का प्रतीक। दिल्ली का वैसे भी स्वभाव रहा है कि वह सिर्फ अपने को ही देखती है और मानती है कि वही पूरे देश को देख रही है।

व्योम : ज़रा पलटकर गुज़रे वक़्त पर नज़र डालें, अपने गीतों के कारण निराला से लेकर बच्चन, नेपाली, वीरेन्द्र मिश्र, नीरज, भारत भूषण, सोम ठाकुर आदि ने काफी लोकप्रियता अर्जित

की और उनके गीत लोगों के दिलो-दिमाग़ पर छाए ही नहीं, बस गए जबकि नवगीत के

संदर्भ में ऐसा नहीं हो सका, नवगीत पठनीय तो अधिक रहे किन्तु गुनगुनाए कम गए, इसके पीछे आप किन कारणों को ज़िम्मेदार मानते हैं ?

मा.ति.: देखिए, लोकप्रियता एक अलग विषय है। कोई रचना लोकप्रिय होने से ही बढ़िया नहीं हो जाती और उसकी अपेक्षा कम लोकप्रिय रचना को भी सिर्फ इसलिए नहीं नकारा जाना चाहिए कि वह कुछ की अपेक्षा कम लोकप्रिय रही। यह सवाल किसी भी प्रकार के लेखन की पड़ताल करें तो पता चल सकता है। कहानी, उपन्यास आदि की दिशा में प्रेमचंद्र कितने लोगों तक पहुँचे। 'मैला आँचल' के बाद फणीश्वरनाथ रेणु की और भी कृतियाँ आईं लेकिन क्या वे उसी तरह व्यापक स्वीकार्य की सीमा में शामिल हो सकीं जैसे 'मैला आँचल'। निराला की लोकप्रियता कितनी है जिनकी तुलना में अन्य लोगों के नाम का उल्लेख आपने किया है। डॉ. शंभूनाथ सिंह, वीरेन्द्र मिश्र आदि जैसे कुछ नवगीत कवि रहे हैं जिन्होंने लोकप्रियता की परिधि में सार्थक उपस्थिति दर्ज़ की। आपने जो नाम गिनाए हैं उनमें कितने हैं जो नवगीत से जुड़े हैं। वे क्या लिखते हैं और मंच पर क्या प्रस्तुत करते हैं इसकी भी जाँच परख होनी चाहिए। उनकी लोकप्रियता के पीछे मंच पर उनकी प्रस्तुतिकला भी एक महत्वपूर्ण कारक होती है। रचना की गुणवत्ता का उसमें बहुतबड़ा हाथ नहीं होता। आज मंच पर ऐसे बहुतसे कवि हैं जो लोकप्रियता में इनमें से किसी से कम नहीं हैं लेकिन उनकी रचनाएँ सृजनात्मकता के धरातल पर कहाँ ठहरती हैं ? कविता के ग्रहण के लिए पाठक या श्रोता में कुछ संस्कारों की आवश्यकता होती है। वास्तविकता यह है कि आज समाज में उसी संस्कार की कमी होती जा रही है। नवगीत पढ़े भी गए हैं और गुनगुनाए भी जाते रहे हैं, यह अलग बात है कि वे गाए कम गुनगुनाए अधिक गए।

व्योम: नवगीत को पूर्व में नया गीत आदि-आदि नामों से पुकारा गया, पचास वर्षों से भी अधिक यात्रा करने के बाबजूद नाम का संकट आज भी अपनी उपस्थिति दर्ज़ करा रहा है,

आपको क्या लगता है ?

मा.ति.: यह संकट नवगीत का नहीं है। नवगीत की परिधि से छूटे या खिसकाए गए कुछ लोग उसे नए-नए नाम देकर जुलूस में शामिल होना चाहते हैं। मैंने भी सहज गीत की चर्चा की है लेकिन वह गीत की संप्रेषणीयता से जुड़ा है। नई कविता के गीत, नए गीत आदि नाम उस

समय गीत में आए बदलाव की ओर संकेत करते हैं। वे संज्ञाएँ नहीं हैं, विशेषण हैं उस समय की रचनाओं को रेखांकित करने वाले। अब नामकरण का एक सिलसिला बन गया है और किसी के विरुद्ध अध्यादेश तो लाया नहीं जा सकता। यह तो रचना और विचार का लोकतंत्र है। हाँ, यह ध्यान देने की बात है कि लोकतंत्र की भी एक मर्यादा होती है, वह भीड़तंत्र नहीं है और ना ही अराजकता या तानाशाही। नवगीत के बाद गीत के अग्रिम चरण का एक ही सार्थक नाम है जन-पक्षधरता या जनबोध की ओर उन्मुख जनवादी गीत। ध्यान देने की बात है कि नवगीत का यह प्रस्थानक वैचारिकता और रचना की समाजोन्मुखता से लैस है। यह किसी की निजी उद्घोषणा नहीं, बरन जन-पक्षधरता की चिंतनशीलता और रचनाकर्म के अभिप्रेय से जुड़ा है।

व्योम : आपके नवगीतों में कथ्य और बिंबों में नयापन तथा भाषा में एक अलग तरह की मिठास एक साथ गुंथी हुईहोती है, ऐसा कैसे कर लेते हैं आप ?

मा.ति. : मैं अपने कथ्य अपने समकालीन जनजीवन से उठाता हूँ। मुझे बिंब और भाषा के लिए किसी द्राविड़प्राणायाम की आवश्यकता महसूस नहीं होती। हमारे आसपास होती बतियाहट, जीवन के रस में डूबी शब्द संपदा स्वयँ यह मिठास भर देती है। कविता में मैंने भवानी प्रसाद मिश्र और ठाकुरप्रसाद सिंह से मिठास को पहचानना और अपनाना सीखा है, मैंने कुमार गंधर्व, पं. जसराज, किशोरी अमोनकर से संगीत की मिठास को अपने में महसूस किया है और फिर उसे अपने शब्दों, बिंबों में पिरोने का प्रयास किया है। जिस तरह गन्ने से मिठास पाई जाती है ऊपर का सख़्त छिलका, गांठें हटाकर। उसी तरह मैंने जीवन के खुरदुरेपन में भी मिठास पाने का प्रयत्न किया है। मैंने जीवन में रिश्तों को बहुतमहत्व दिया है। सबको प्यार, अपनापन देने और सबसे पाने का आग्रही रहा हूँ। यह मिठास वहाँ से भी मिलती है। मेरे लिए घर मिठास का सबसे बड़ा श्रोत है। वहाँ से भाषा भी मिलती है और विचार भी।

व्योम : आप लम्बे समय से कविसम्मेलनीय मंचों से जुड़े रहे हैं, आज भी उसी ऊर्जा के साथ

आपकी उपस्थिति मंचीय गरिमा में बृद्धि कर रही है। कृपया बताएँ कि आज अकविता के संक्रमण काल में क्या मंचों पर फिर से गीत का वही स्वर्णिम समय वापस लौटने की आशा की जा सकती है ?

मा.ति. : आप जिसे अकविता कहते हैं, मैं उसे कवित्वहीनता मानता हूँ। मैंने छठे दशक के उत्तरार्ध से कविसम्मेलनों में जाना आरंभ किया था। उस समय जो कवि मंचों पर उपस्थित रहते थे वे साहित्य जगत के प्रतिष्ठित लोग थे। पत्र-पत्रिकाओं, पाठ्य-पुस्तकों से लेकर मंचों तक। सन् 1962 के बाद वह सिलसिला क्षीण होता गया। अब तो मंच पर उपस्थित लोगों में एकाध अपवाद को छोड़ दिया जाए तो मंचों पर अभिनेताओं व जोकर कवियों की ही भीड़ है। सही कविता को अपदस्थ करने का अनवरत प्रयास ज़ारी है लेकिन मैं निराश नहीं हूँ। निराश होना मेरे स्वभाव में नहीं है। कविता लौटेगी फिर मंचों पर गीत के रूप में भी और अन्य रूपों में भी, ऐसा मेरा विश्वास है।

व्योम : आपने भोजपुरी में भी रचनाकर्म किया है, नवगीतों को आंचलिक भावभूमि पर उसी भाषा में पगाकर प्रस्तुत किया जाता रहा है, वर्तमान में रचे जा रहे नवगीतों में आंचलिक भाषा

की क्या भूमिका है तथा नई कोंपलों से आंचलिकता के संदर्भ में क्या-क्या आशाएँ की जा

सकती हैं ?

मा.ति. : आंचलिकता रचना में नवता लाती है लेकिन वह दाल में छौंक या बघार की सीमा तक ही होनी चाहिए। किन्तु जब आंचलिकता को ही पूरी दाल बनाने की कोशिश किसी रचना में हो तो वह कविता का दोष बन जाती है और रचना का प्रयोजन ही नष्ट हो जाता है। अपने आरंभिक काल में नवगीत के कई रचनाकारों ने यह काम किया लेकिन वह लोक- जीवन, लोक-प्रकृति, लोक-स्वर के स्तर पर और कुछ हद तक शब्द प्रयोग के स्तर पर भी। बहुतसे लोग उसे शब्द तक ही सीमित कर देते हैं, इससे सम्प्रेषणीयता बाधित होती है। आंचलिकता को ऐसे लोग़ फैशन के तौर पर लेते हैं, यह उचित नहीं है। शब्द को उसके परिवेश के साथ उठाना चाहिए।

व्योम : क्या आप मानते हैं कि गीत-नवगीत के विरुद्ध एक मोर्चा सुनियोजित रूप से लामबंद है, यदि हाँ तो कृपया बताएँ कि हिंदी साहित्य पर इसके क्या-क्या प्रभाव पड़ने की संभावना है?

मा.ति.: गीत-नवगीत तो एक बहाना है, पूरे छांदसिक लेखन के बरख़िलाफ़ एक मोर्चा दशकों पहले से लामबंद है। वह कभी धीमा पड़ जाता है और कभी तेज़ हो जाता है। कविता में इस तरह का विभाजन अंततः कविता के ही विरुद्ध जाता है और उसी को क्षतिग्रस्त करता है। नवगीत में ऐसे कई लोग हैं जो सिर्फ कविता और अच्छी कविता के ही प्रशंसक हैं फिर वह किसी भी फॉर्म में हो लेकिन दूसरा वर्ग केवल छांदसिक रचनाओं को गरियाने या धकियाने में ही रुचि रखता है। अरुण कमल की मैं प्रशंसा करता हूँ जिन्होंने अपने एक साक्षात्कार में पिछले दिनों यह कहा कि हिंदी छंदों का मुझे ज्ञान नहीं है और मैं तो उन्हें ठीक से (लय के साथ) पढ़ भी नहीं सकता। कभी इसी तरह अपने एक साक्षात्कार में शमशेर बहादुर सिंह ने कहा था कि रचना में अगर छंद हो और वह अभिव्यक्ति को किसी तरह वाधित न करे तो वह सोने में सुहागा जैसा होगा। बात साफ है कि रचना महत्वपूर्ण है, फॉर्म उसे और अधिक ग्राह्य और सम्प्रेषणीय बनाता है। छांदसिक कविता को इसी दृष्टि से जाँचा परखा जाना चाहिए। सिर्फ छंद में होने से ही कोई कविता, कविता के संसार से वहिष्कृत नहीं की जानी चाहिए ठीक उसी तरह जैसे मुक्तछंद में होने पर कोई कविता, कविता के लोक की नागरिक नहीं बन सकती। ऐसा होगा तो भवानी प्रसाद मिश्र, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, केदारनाथ अग्रवाल, धर्मवीर भारती आदि जैसे असंख्य कवियों की रचनाओं के प्रति एक अंधदृष्टि ही काम करेगी। क्या राजेश जोशी, मंगलेश डबराल, अरुण कमल, वीरेन डंगवाल, नरेन्द्र जैन आदि को मैं इसलिए पढ़ना छोड़ दूँ या उन्हें कवि ही मानना छोड़ दूँ कि वे मुक्तछंद में लिखते हैं। ऐसी दृष्टियाँ संकीर्णता की परिचायक हैं, रचना के संसार में इनके लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए।

व्योम : जहाँ कुछ गीतकवियों की रचनाओं में अभिनव प्रयोग के नाम पर अपरिचित प्रतीकों के साथ-साथ दुरूह शब्दावली का प्रयोग मिलता है, वहीं अनेक गीत कवियों द्वारा अपनी रचनाओं को नवगीत का नाम देकर सपाटबयानी को परोसा जा रहा है, आपको क्या लगता है ?

मा.ति.: प्रयोगशीलता का स्वागत होना चाहिए। वह रचनाकर्म के निरंतर विकास की परिचायक है लेकिन भाषा और अन्यान्य प्रयोगों से अगर सम्प्रेषणीयता वाधित होती है तो वह उचित नहीं है। रचनाकर्म दो तरह का होता है - स्वतः स्फूर्त और द्राविण प्राणायाम से ग्रसित। अगर रचना स्वतः स्फूर्त नहीं है और आप सृजन की अपेक्षा सृजन को उत्पादन में ढालने की कोशिश करते हैं वह रचनाकर्म से छिटककर अलग हो जाता है। कभी एक मध्यकालीन हिंदी कवि ने लिखा था - 'लोग हैं लागि कवित्त बनावत/ मोहि तो मेरे कवित्त बनावत'। शायद इस तरह के लोग पहले भी रहे हैं तभी तो कवि को यह लिखना पड़ा। सपाटबयानी अगर कविता में ढलकर आए तो वह कविता ही होगी। सरलता और सपाटबयानी दोनों अलग-अलग हैं। जब शैलेन्द्र लिखते हैं - 'तू ज़िन्दा है तो ज़िन्दगी की जीत पर यकीन कर/ अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ला ज़मीन पर' तो यह सपाटबयानी नहीं है, यह एक ऐसी रचना है जो करोड़ों लोगों को प्रेरित करती है। सपाट गद्य तो हो सकता है कविता नहीं।

व्योम : आजकल एक नया प्रयोग प्रचलन में है कि हिंदी के रचनाकार ग़ज़लें और उर्दू के रचनाकार गीत लिख रहे हैं, परिणामतः शिल्पदोष का ख़तरा दोनों ही ओर उत्पन्न हो रहा है, आपका मत क्या है ?

मा.ति.: हिंदी और उर्दू दोनों भारतीय ज़मीन की उपज हैं, इनमें परस्पर लेन-देन, प्रभाव ग्रहण स्वीकार्य होना चाहिए। उर्दू में जो गीत लिखे जा रहे हैं उनकी अंतर्वस्तु काफी पीछे की है। उनमें समकालीन यथार्थ नहीं है। हिंदी कवियों द्वारा लिखी जा रही ग़ज़लों में छांदसिक त्रुटियाँ ढूँढी जा सकती हैं लेकिन काफी हद तक उनमें सुधार आया है, फिर भी पूर्णतः दोषमुक्त होने में उसे अभी समय लगेगा। उर्दू गीत को समकालीन गीत के बरक्श खड़ा होना पड़ेगा। यह असंभव भी नहीं है, सिर्फ गीत लेखन को गंभीरता से लेने की ज़रूरत है।

व्योम : हिंदी साहित्य की सभी विधाओं में आपका विशद अध्ययन है। वर्तमान में कहानी, उपन्यास, लघुकथा आदि को विमर्श के खांचों में फिट किया जा रहा है, जैसे अमुक कहानी स्त्री-विमर्श पर है या दलित-विमर्श पर केन्द्रित है। विमर्श के नाम पर इस तरह के बँटवारे से आप कितना और क्यों सहमत या असहमत हैं, क्या गीत-नवगीत के संदर्भ में भी ऐसे प्रयोग की आशंकाएँ हैं ?

मा.ति.: विमर्श समकालीन लेखन को समझने की एक नई कोशिश है। फिर वह चाहे दलित लेखन हो या स्त्री विमर्श, होना यह चाहिये कि उन्हें पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर जाँचा परखा जाये। रचनाशीलता के पैमाने पर वह कितना कलात्मक है, यह जाँचना पहले जरूरी है। फिर उसमें जो विचार उपजते हैं उनकी पैमाइश की जानी चाहिये। आज जब दशकों में बाँटकर साहित्य की पड़ताल की जा रही है तो ये विमर्श भी उसी में आते हैं। अभी इनसे जुड़े रचनाकारों में स्वीकार्यता का संकट है, उससे मुक्त हो जायेंगे तो सब सामान्य लगेगा। गीत-नवगीत में इसकी कोई आवश्यकता नहीं, वह आम आदमी, शोषित-पीड़ित जन का पक्षधर

है जिसमें दलित भी हैं और स्त्री भी। गीत जोड़ता है खानाबंदी में विश्वास नहीं करता। गीत अपनेआप में जनकाव्य है, उसमें सामंत, शोषक, उत्पीड़क आ भी नहीं सकते।

व्योम : वरिष्ठ रचनाकार श्री ज़हीर कुरैशी, सूर्यभानु गुप्त जैसे अनेक महत्वपूर्ण गीत-नवगीत कवि बाद में ग़ज़ल, कहानी, समीक्षा के क्षेत्र में चले गए और वापस नहीं लौटे, आपकी दृष्टि में

इसके पीछे क्या कारण हो सकते हैं ?

मा.ति.: मैं इसे सकारात्मक रूप में लेता हूँ। हर रचनाकार अपनी अभिव्यक्ति के लिए फॉर्म की तलाश करता रहता है और जब वह उसे मिल जाता है तो उसी में रम जाता है। यही दुष्यंत कुमार ने 'साये में धूप' की रचनाओं तक पहुँचनेमें किया। शलभ श्रीराम सिंह, नरेश सक्सेना, सूर्यभानु गुप्त आदि सबने यह किया है। अभिव्यक्ति के दबाव के कारण ही तो उपन्यास, कहानी, लघुकथा, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि का जन्म हु आ। जिस फॉर्म में जो सहज महसूस करता है उसे ही अंततः अपना लेता है। गीत लेखन वैसे भी कठिन साधना और लम्बे धैर्य की माँग करता है। संभव है कि कुछ लोग उससे बचते हु एअपेक्षाकृत कम साधना वाले पथ अपनाते होंगे। वैसे ज़हीर कुरैशी ने अपनी ग़ज़लों और दोहों में और इसी तरह सूर्यभानु गुप्त ने जो दोहे और ग़ज़लें लिखी हैं, उनमें नवगीत झाँकता दिख जाएगा अगर ग़ौर से देखें तो। कैलाश गौतम, यश मालवीय, विनय मिश्र ने भी तो यही किया है, इन सबमें नवगीत उपस्थित है। हाँ, कुछ लोग अवश्य हैं जो गीत से मुक्त होकर पूरी तरह ग़ज़लियत में समा गए।

व्योम : नवगीत के क्षेत्र में श्रीमति शांति सुमन, डॉ. यशोधरा राठौर, राजकुमारी 'रश्मि', मधु शुक्ला आदि कुछ ही गिनी-चुनी महिलाओं ने अपना सम्मानजनक स्थान बनाया है, क्या कारण रहे कि नवगीत सृजन में महिला रचनाकारों की संख्या पुरुषों की तुलना में काफी कम रही ?

मा.ति.: हिंदी साहित्य में, विशेष रूप से कविता के क्षेत्र में महिलाओं की उपस्थिति पुरुषों की अपेक्षा कम रही है। पुराने साहित्य में भी हमें मीरा, सहजोबाई, आलम जैसे कुछ ही नाम मिलते हैं। आधुनिक काल में भी तारापंत, महादेवी वर्मा, तोरनदेव लली, सुभद्रा कुमारी चौहान, सुमित्रा कुमारी सिन्हा, शकुन्तला सिरौठिया, स्नेह लता स्नेह जैसी अल्प संख्या में ही महिलाएं सक्रिय रही हैं। हाँ, गद्य में अवश्य यह संख्या बढ़ी है। इसलिये नवगीत में डॉ0 शांति सुमन, डॉ0 यशोधरा राठौर, राजकुमारी रश्मि, मधु शुक्ला जैसे यदि कुछ नाम ही उभरकर सामने आये तो चिन्ता की बात नहीं है। इनका लेखन अपने समकालीन पुरुष रचनाकारों के समानान्तर किस मज़बूती से खड़ा है, यह विचारणीय है। गीत घर से बाहर निकलकर ही लोगों के जीवन, अपने समकालीन समय को ठीक से जानने बूझने के बाद ही लिखा जा सकता है। गीत लेखन वातानुकूलित कमरों, सजे-धजे ड्राइंग रूमों, प्रभावशाली अध्ययन कक्षों में बैठकर नहीं किया जा सकता। अपने गृहस्थ जीवन के दायित्वों को निभाते हु एएक आम भारतीय गृहणी घर से ज़्यादा से ज़्यादा बाज़ार तक ही जा सकती है। इससे उसे अपने लेखन की विषय वस्तु के चयन और उसकी उत्प्रेरक स्थितियों से साक्षात्कार सम्भव है। डॉ0 कीर्ति काले में भी व्यापक सम्भावनायें थी लेकिन बाजार ने उनके साथ भी काफी तोड़-फोड़ की। बाकी तो भीड़ भी है और भाड़ भी। लेकिन जो हैं बे मज़बूत कदम

काठी, गहरी वैचारिकता से लैस सृजन में रत हैं, उनका सम्मान किया जाना चाहिये। नवगीत को भीड़ की नहीं समर्थ रचनाकारों की ज़रूरत है।

व्योम : आपकी चार नवगीत कृतियाँ प्रकाशित हो चुकीं हैं और कई पांडुलिपियाँ प्रकाशन की बाट जोह रही हैं, उक्त के अतिरिक्त आप द्वारा गद्य में भी आलेख आदि के रूप में पर्याप्त

मात्रा में महत्वपूर्ण सृजन किया गया है, कृतियों के प्रकाशन की आगामी योजना क्या है ?

मा.ति.: कविता संकलनों के प्रकाशन की स्थिति कभी भी सुखद नहीं रही। दुलारेलाल भार्गव जो निराला जी की कृतियों के एक प्रमुख प्रकाशक भी रहे, वे स्वयँ भी एक कवि थे लेकिन निराला जी का अनुभव उनके साथ भी बहुतसुखद नहीं रहा। प्रकाशन एक लम्बा चौड़ा व्यवसाय बन गया है। कोई अपनी कृति प्रकाशित कराना चाहता है तो उसे अपनी जेब ढीली करनी पड़ती है। अगर कोई निजी तौर पर अपना संकलन छपवाता है तो उसके सामने व्यापक पाठक समुदाय तक पहुँचानेकोई तंत्र नहीं होता, फलतः अधिकांश पुस्तकें लोकार्पण में और मुफ़्त में बँट जाती हैं और बची हुईपुस्तकें कमरे का एक कोना घेरकर पड़ी निरीह भाव से ताकती रहती हैं। ऐसे में आगामी प्रकाशनों के विषय में क्या आश्वस्ति पाल सकता हूँ। हाँ, यह अवश्य है कि यदि प्रकाशन का सुयोग मिला तो पहले मैं अपने शेष गीत संग्रहों को प्राथमिकता दूँगा। गद्य का प्रकाशन बाद में होगा या नहीं भी होगा तो मुझे कोई चिंता नहीं है। मेरा काम है लेखन, वह बना रहेगा सिर्फ इस संबंध में विश्वासपूर्ण आश्वस्ति सौंप सकता हूँ।

व्योम : आपका विपुल सृजन और आपकी अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ किसी को भी आपसे

ईर्ष्याभाव रखने लिए उकसा सकती है, फिरभी ऐसा क्या है जो आपको लगता है कि अभी

करना बाक़ी है ?

मा.ति. ः सृजन का मूल्यांकन संख्या के आधार पर नहीं उसकी गुणात्मकता के आधार पर होना चाहिए। यह गुणात्मकता निरंतर सृजनशीलता से ही पाई जा सकती है। रचना में ठहराव या जो रच चुके हैं उसी को उपलब्धि मान लेना आत्महत्या है। मुझे महसूस होता है कि अब तक मैंने जो लिखा है उससे कहीं ज़्यादा अभी अनलिखा ही रह गया है। संभवतः माहेश्वर तिवारी को जो और जैसा लिखना था, वह अभी नहीं लिख पाए हैं इसीलिए उसतक पहुँचनेऔर उसे लिखने के क्रम में ही लिखना ज़ारी है। हर रचना एक उपलब्धि है लेकिन उससे आगे जो है उसे पाने तक लिखना है। हो सकता है इस जीवन में संभव न हो तो अगले जीवन में भी उसके लिए प्रयासरत रह सकूँ, यही कामना है। एक बड़ी कविता लिखना चाहता हूँ गीत के रूप में, कुछ प्रबंधात्मक भी और वह जब तक न मिल जाए लिखते रहना है।

व्योम : नवगीत के संदर्भ में नई पीढी की दशा और दिशा के विषय में आपका मत क्या है और नई पीढी से नवगीत के भविष्य के प्रति आपकी अपेक्षाएँ क्या हैं ?

मा.ति. ः गीत-लेखन साधना की अपेक्षा रखता है । नए लोग शार्टकट अपनाना चाहते हैं इसीलिए आज गीतकवि कम संख्या में सामने आ रहे हैं । एक समय तो यश मालवीय और विनोद श्रीवास्तव तक आकर लगा कि नवगीत लेखन की परंपरा ख़त्म हो गई लेकिन यशोधरा राठौर, योगेन्द्र 'व्योम', जयकृष्ण 'तुषार', आनंद 'गौरव', देवेन्द्र 'सफल', शैलेन्द्र शर्मा, आनंद तिवारी, मनोज जैन 'मधुर' की रचनाशीलता के रूप में फिर नवगीत की डालों में कल्ले फूटते नज़र आने लगे हैं । नई पीढी से अपेक्षा है कि वह चकाचौंध (ग़ज़ल, दोहा आदि) से निकलकर गीत से, नवगीत से जुड़कर अपनी भारतीय कविता की जड़ों की ओर लौटे । यह लौटना पीछे लौटना नहीं, ठहराव से निकलकर आगे बढ़ना होगा । कविता को उसकी अपनी ज़मीन से जोड़ना होगा ।

व्योम : कृपया अपने जीवन का कोई रोचक संस्मरण सुनाइये ?

मा.ति. ः जीवन तमाम प्रसंगों से भरा है । इस समय एक प्रसंग याद आ रहा है - सुल्तानपुर (उ.प्र.) के राजकीय इंटर कॉलेज में कविसम्मेलन था । संयोजक कथाकार स्व. गंगाप्रसाद मिश्र थे । उनसे मेरा पारिवारिक रिश्ता था । कविसम्मेलन में देर से पहुँचनेके कारण जिन कपड़ों में था उन्हीं में सीधा मंच पर पहुँचगया ।मंच पर पहुँचतेही काव्यपाठ करना पड़ा । कविता पढ़कर मंच से उठकर चाय पीने के लिए आया । मैंनें कविसम्मेलन में अपना याद वाला गीत पढ़ा- 'याद तुम्हारी जैसे कोई कंचन कलश भरे/जैसे कोई किरन अकेली पर्वत पार करे' । चाय पी रहा था तो एक वयोबृद्ध सज्जन पास आए और ऐसा सवाल कर बैठे कि उनकी आयु और प्रश्न सुनकर मैं चौंक गया । उन सज्जन ने बड़ी गंभीरता से कहा - 'तिवारीजी, मेरी एक जिज्ञासा है' मैंने सहमति में अपना सिर हिलाया तो पूछ बैठे - 'यह घटना कहाँ की है और यह किरन कौन है? क्या वह आपके साथ नहीं थी उस पहाड़ पर' मैंने जैसे-तैसे उन्हें टाला, और जब कवि मित्रों से उसकी चर्चा की तो सभी ठहाका मारकर हंस पड़े ।

व्योम: आपका बहु त-बहु तधन्यवाद ।

साक्षात्कारकर्त्ता -

योगेन्द्र वर्मा 'व्योम'

ए.एल.-49, सचिन स्वीट्स के पीछे, दीनदयाल नगर फेज़-I,काँठ रोड,

मुरादाबाद (उ0प्र0)-244001

चलभाष- 9412805981

पुस्तक समीक्षा

निषिद्धों की गली का नागरिक -आक्रोश से लबालब एक सात्विक नवगीत संग्रह

--संजय शुक्ल

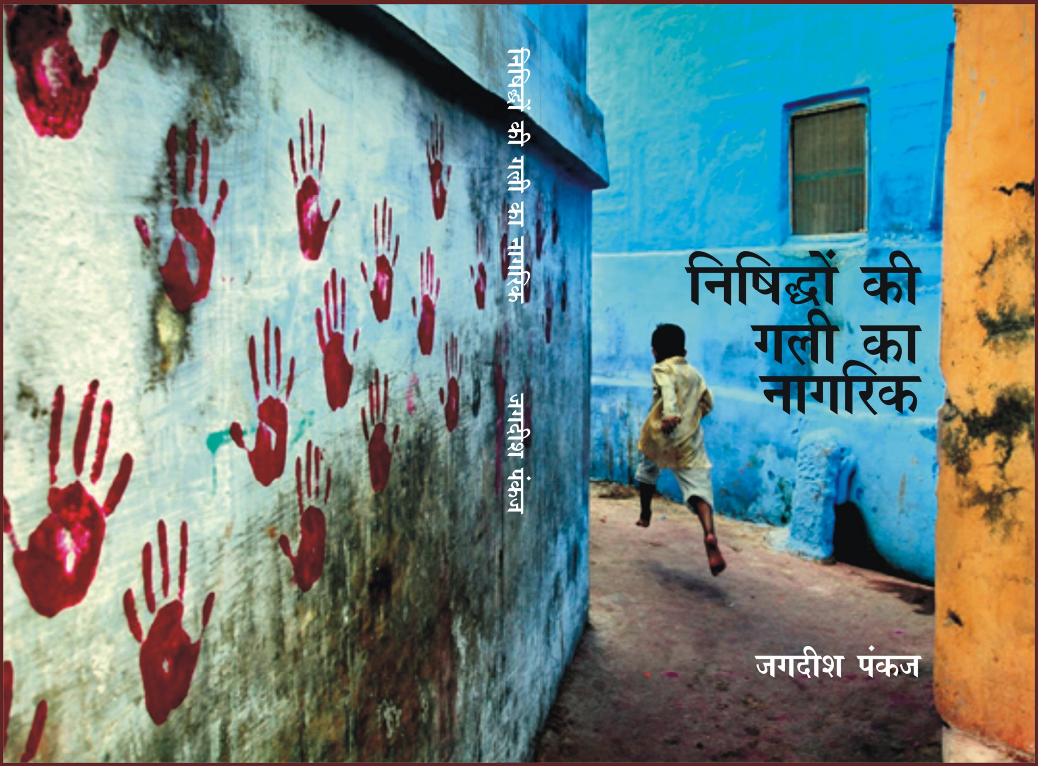

'सुनो मुझे भी' कवि -गीतकार जगदीश पंकज का प्रथम नवगीत संग्रह था,जिसने अपार लोकप्रियता प्राप्त की। प्रथम संग्रह में पंकज जी ने अपने कवि धर्म का लक्ष्य और उद्देश्य स्पष्ट कर दिया था. अपने गीतों में कवि पीढियों से शोषित समाज को कथ्य के रूप में चुनता है और उनका स्वर बनता है। शोषक वर्ग पर कडा प्रहार करता है और उसे समय-समय पर सचेत भी करता है। यही बानगी और तेवर पंकज जी के दूसरे नवगीत संग्रह 'निषिद्धों की गली का नागरिक' में भी और अधिक मुखर और प्रखर होकर कायम है। इन दिनों विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भिन्न-भिन्न विमर्शों पर आलेख,गीत-नवगीत ,कहानियाँ इत्यादि प्रकाशित होती रहती हैं। मुख्य विषय जो सामान्यतः देखने में आते हैं वो दो ही हैं -एक दलित विमर्श और दूसरा स्त्री विमर्श। निश्चित और आवश्यक रूप से जब तक समाज में पूर्ण समानता स्थापित न हो,तब तक इन विषयों पर प्रत्येक संवेदनशील रचनाकार को ,चाहे वह किसी भी वर्ग का क्यों न हो अपनी भावनाओं को निष्पक्ष होकर प्रस्तुत करते रहना चाहिए। संतोष की बात यह है कि

ऐसा कुछ समर्पित और समर्थ साहित्यकार निरंतर कर भी रहे हैं और उनका इन विषयों पर लिखना सिर्फ रस्मी नहीं है,अपितु इसके पीछे उनकी सात्विक सोद्देश्यता भी झलकती है। दुःख तब होता है जब कभी बहुत उत्तेजक रचनाएँ अतीत में हुए दमन का बदला उस समय के शोषक वर्ग के वंशजों से लेने का आह्वान करती सी दिखाई देती हैं। उन रचनाओं में विध्वंशक प्रतिशोध दिखाई पड़ता है। पंकज जी के यहां आक्रोश है ,प्रतिकार है पर समानता और समरसता का स्थायी भाव लिए हुए। यही कारण है कि आज जब चारों ओर समाज में एक अजीब सी अस्थिरता व्याप्त है,मूल्यों का पतन हो रहा है ,सद्भाव,सहिष्णुता का निरंतर ह्रास हो रहा है,पूरी दुनिया मानो बारूद के ढेर पर बैठी कभी भी भस्म होने को है तब पंकज जी का कवि कहता है -

'सब कुछ ख़त्म नहीं है अब भी /बहुत शेष है उसे संवारो/खिलते फूलों पर मँडराती तितली के पंखों के रंगों की झिलमिल जिन्दा है/नभ में उड़ाते हुए परिंदों की लंबी उड़ती बतियाती महफ़िल भी ज़िंदा है /गौरैया की चहक अभी भी ,नहीं ख़त्म है, उसे पुकारो/अभी बहुत आँखों में पानी ज़िंदा है /जीवित है मन में करुणा संवेदन भी/जीवित है ममता,वत्सल,अनुराग प्रेम //अभी शेष लज्जा सत्कार निवेदन भी/जीवित है सौजन्य नम्रता ज़िंदा है उसे दुलारो। ' आज के इस आपाधापी के युग में संग्रह के आरम्भ में आशाओं से भरा यह गीत क्या मंगलाचरण से कम है ?

पंकज जी जीवन में सतत पारदर्शिता के पक्षधर हैं। कृत्रिमता ,झूठे आश्वासन से उनको घोर आपत्ति है। सच्चाई को स्वीकार कर लेना ही नहीं,अपितु भ्रामक उपदेशों,रसविहीन नाटक,भ्रष्ट आचरण और कर्महीन जीवन को नकार देना भी वह धर्म मानते हैं। वह गंधहीन पुष्पों के चयन से अच्छा कंटकों को पसार देना मानते हैं ____'अर्थहीन स्वीकृतियों से /अच्छा है खुलकर तुम /सब कुछ नकार दो /आश्वासन झूठ से सने /भ्रामक उपदेश दे रहे /क्रंदन जो मूक फूटता/तुम उसको विघ्न कह रहे/गंधहीन पुष्पों से अच्छा है /चुनकर तुम /काँटे पसार दो।

पंकज जी कहते हैं, ____"मेरी रचनाओं में आक्रोश केवल दलित के लिए ही नहीं बल्कि शोषण पर आधारित व्यवस्था में न्यायपूर्ण अधिकार के लिए समान परिस्थितियों में जीने वाले सभी शोषित,पीड़ित तिरस्कृत और बहिष्कृत आम नागरिकों के लिए है। " निम्नलिखित पद्यांश इसके प्रमाण के लिए कितना सटीक है __'जो तुम कहो ,बस वह सही/यह किस महाजन की बही/जो कर्जही ढोते रहें हम उम्रभर /प्रतिबन्ध पीड़ित पक्ष पर /प्रतिवाद का अवसर नहीं /कैसी संहिता न्याय का भी हो जहां भी स्वर नहीं/अभियुक्त का भयमुक्त का/सब साधनों से युक्त का /प्रतिकार अब बोते रहें हम उम्रभर।'

पंकज जी के नवगीतों में यथातथ्यता उनके परिवर्तनकामी मन पर कहीं भी भारी पड़ती दिखाई नहीं देती। उनकी रचनाएं जनता के भावों को स्वर तो देती ही हैं ,साथ ही जनता में उस व्यवस्था को बदलने की इच्छा भी पैदा करती हैं ,जो जनविरोधी हैं और जिनसे जनता के हिस्से

निराशा ,हताशा के सिवाय कुछ नहीं मिलता। पंकज जी का कवि हार नहीं मानता ,वह सजग है और पूरी शक्ति और ऊर्जा के साथ गाता है ___'एक स्वर अपना मिलाएं /उनस्वरों में/जो अँधेरे से,धुएँ से लड़ रहे हैं /आलमारी में सजे सन्दर्भ-ग्रंथों का /सुशोभित संचयन भी /जब हमारे रिक्त जीवन सा/ तिरस्कृत हो रहा है / दम्भ की उद्घोषणाओं से सजा जो /झूठ तनकर, मंच प्रायोजित करा /हुंकार भस्भर कर /पुरस्कृत हो रहा है /तानकर कर मुट्ठी मिलाएं हाथ उनसे /जो प्रबल प्रतिकार करते बढ़ रहे हैं। '

जगदीश पंकज जी की विशेषता यह है की वे भोगे हुए यथार्थ को बहुत ही कुशलता से चित्रित करते हैं और उसको अत्यंत तीखी और मारक अभिव्यंजना देते हैं ,इसके लिए कृत्रिम भाषा की आवश्यकता नहीं पड़ती। बिम्ब ,लय ,प्रतीक, छंद मानो स्वयं ही उस सत्य को स्वर देने लगते हैं ___'कौन हैं ,क्यों कर रहे हैं /भंग निजता को हमारी/झोंपड़ी में झाँक /छेदों से, दरारों से /सोचता हूँ ,हम कहाँ स्वायत्त/हमको घूरती अनजान सी आँखें निरंतर /कौन मेरे साथ,पीछा कर रहा/ बचकर ,गड़ाकर दृष्टि /मेरे हर कदम पर /कौन है भयभीत ,किसको चढ़ रहा ज्वर /देख मेरे मौन के निश्चित विचारों से।

'पेड़ पर लटके हुए शव लड़कियों के' संग्रह की अत्यधिक मार्मिक और झकझोर देने वाली रचना है। कवि के अपने ही प्रदेश के एक शहर में दो युवतियों के साथ मन से नपुंसक कुछ युवक सामूहिक बलात्कार के बाद नृशंस हत्या करके शवों को पेड़ पर लटका दें और संवेदनशील कवि मौन रह जाए ऐसा संभव नहीं। पूरी मानव जाति पर कलंक बनी इन घटनाओं से कवि उद्वेलित हो उठता है ____'पेड़ पर लटके हुए शव लड़कियों के /सिर्फ मादा जिस्म,या कुछ और हैं /कौन हैं ये लड़कियाँ रौंदी गयी हैं देह जिनकी /क्यों प्रताड़ित हैं दलित /अपमान को पीते हुए भी /कौन हैं वे गर्व जिनको /लाडलों की क्रूरता पर /क्यों समय निर्लज्ज बैठा मौन को जीते हुए भी /सांत्वना के शब्द भी हमदर्द होकर /गालियों के बन रहे सिरमौर हैं /यह दबंगों की सबल संपन्न,सत्ता-अंध क्रीड़ा /जब तुम्हारे बीच से उठकर तुम्हें धिक्कार देगी आज के असहाय जन की कसमसाहट/मुखर होकर संगठित हो/एक दिन संघर्षमय प्रतिकार लेगी /रोक सकते क्रूरता तो रोक लो यह/आ रहे बदलाव के अब दौर हैं। '

रचनाकार की संवेदना सिर्फ अपने प्रदेश तक ही सीमित नहीं रहती।कवि का मन अपने देश की युवतियों पर हो रहे अत्याचार को देखकर विह्वल होता हैं तो शत्रु देश के एक विद्यालय में हुए भोले मासूम बच्चों के सामूहिक क़त्ल पर भी कराह उठता है। प्राकृतिक आपदाएं चाहे उत्तराखंड में विनाश करें या नेपाल में तबाही मचाएं ,पंकज जी जैसे भावुक और संवेदनशील कवि को विचलित कर जाती हैं,उनके अंतर में एक चीख घुमड़ती है जो गीत बनकर जन-जन तक पहुँचती है।

इस सदी में जहां यांत्रिक निकटता बढ़ी है वहीँ हार्दिक दूरियां विस्तार पा रही हैं। संबंधों में मसृण औपचारिकता पसर गई है। पंकज जी यह सब देखकर आहत तो होते हैं तथापि एक आशा उनके मन में सुहाने अतीत के लौट आने की भी अभी शेष है ____' कैसा होगा ,फिर से जब रिश्ते महकेंगे /अपनेपन से /दूर -दूर ही सही मगर अकुलाहट होगी /कलियों फूलों को मिलने की चाहत होगी /गलबहियों में नहीं औपचारिकता होगी /झूठे मन से /जब संबंधों में सच्ची गर्माहट होगी /एक दूसरे को पीड़ा की आहट होगी /कैसा होगा जब निश्छल करुणा फूटेगी /संवेदन से /आशीर्वाद झरेंगे मन की गहराई से आदर,वत्सल ,नेह मिलेंगे तरुणाई से /कैसा होगा जब साझी सी गंध बहेगी हर उपवनसे.

संग्रह में अनेक शेड्स के नवगीत हैं। पंकज जी के गीतों में कहीं नागरिक जीवन की विसंगतियां ध्वनित हुई हैं तो कहीं जीवन में अनायास ही आ गई उदासी प्रतिध्वनित हुई है कवि ने जहां सामाजिक सरोकारों को व्यापकता से ग्रहण किया है वहीँ सांस्कृतिक और राजनीतिक पतन पर भी व्यंग्य किया है परंतु उनके नवगीतों में आक्रोश,व्यथा और करुणा शोषित,दमित और दलित वर्ग के पक्ष में मुख्य रूप से अभिव्यंजना पाते हैं। कवि बिना किसी संकोच के ,लाग-लपेट के चुनौतीपूर्ण शैली में स्पष्ट कर देते है कि मैं वंचितों का दमन देख चुप न रहूँगा__'चुप रहूँ ,कुछ न कहूँ /संभव नहीं है /देखकर विद्रूपताएं इस समय की /जब अभावों ने मुझे पाला सँवारा /बेबसी की धुप ने बनकर सहोदर /छाँव की हर चाह में चलता रहा ,अवमानना के दंश खाकर ,खिन्न होकर /वंचितों का मैं प्रवक्ता ही रहूंगा/आरती संभव नहीं मुझसे अनय की। '

उपर्युक्त पद्यांश यह स्पष्ट कर देता है कि पंकज जी के नवगीत सर्वहारा के मित्र हैं। उनका उपेक्षितों के प्रति आत्मीय लगाव संग्रह की केंद्रीय धुरी है। कवि ने अपने पहले नवगीत संग्रह का शीर्षक दिया 'सुनो मुझे भी'। लगता है जैसे कवि ने पाठकों,श्रोताओं का अपनी ओर,अपने स्वर की ओर तथा अपने उद्देश्य की ओर ध्यानाकर्षित करने के लिए धीर,गंभीर पुकार लगाईं हो। निःसंदेह कवि को इसमें सफलता भी मिली। सुधि साहित्य प्रेमी इस नए,सार्थक स्वर की ओर खीचते चले गए। उन्हें पहले संग्रह को अपना अपार प्यार और समर्थन तो दिया ही ,साथ ही इस बात की प्रतीक्षा भी करने लगे कि कवि आगे और क्या कहना चाहता है। पंकज जी ने लोगों की जिज्ञासा को मानो शांत करते हुए ही अपना दूसरा नवगीत संग्रह उन तक पहुँचाया है - 'निषिद्धों की गली का नागरिक '। पहले संग्रह का शीर्षक तथा दूसरे संग्रह के शीर्षक गीत की ध्रुव पंक्तियों को जोड़कर अगर पढ़ा जाये तो वाक्य बनता है 'सुनो मुझे भी ,मैं निषिद्धों की गली का नागरिक हूँ '.इस पूरे गीत की सुगठित,सुरचित

पदावलियों में क्षोभ और आक्रोश को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से ,पूरी ऊर्जा और शक्ति के साथ कवि ने प्रस्तुत किया है। अपने जीवनानुभव को अपने जैसे असंख्य लोगों से जोड़ते हुए अभिव्यक्त किया है। गीत में सत्यता रोष के साथ प्रस्तुत की गयी है। सच्चाई रचना को जहां धारदार बनाती है वहीँ रोष उसे एक नुकीलापन प्रदान करता है। यह गीत की नोंक घायल करने

के लिए नहीं अपितु हृदय में धीरे-धीरे एक चुभन सी देती रहती हैऔर विवश करती है यह सोचने के लिए कि कवि ने ऐसा क्यों कहा ___"भीड़ में भी तुम/मुझे पहचान लोगे / मैं निषिद्धों की गली का नागरिक हूँ/ हर हवा छूकर मुझे तुम तक गयी है /गंध से पहुंची नहीं क्या यंत्रणाएँ /या किसी निर्वात में रहने लगे तुम /कर रहे हो जो तिमिर से मंत्रणाएं /मैं लगा हूँ राह निष्कंटक बनाने /इसलिए ठहरा हुआ पथ में तनिक हूँ/हर कदम पर भद्रलोकी आवरण हैं /हर तरह विश्वास को जो छल रहे हैं /था जिन्हें रहना बहिष्कृत ही चलन से /चाम के सिक्के धड़ाधड़ चल रहे हैं /सिर्फ नारों की तरह फेंके गए जो / मैं उन्हीं विख्यात शब्दों का धनिक हूँ /मैं प्रवक्ता वंचितों का, पीड़ितों का / यातना की रुद्ध वाणी को कहुंगा /शोषितों को शब्द देने के लिए ही /हर तरह प्रतिरोध में लड़ता रहुंगा /पक्षधर हूँ न्याय,समता ,बंधुता का /मानवी विश्वास का अविचल पथिक हूँ। "

गीत की अंतिम पंक्तियाँ कवि के सात्विक संकल्प और उद्देश्य की पुष्टि करती हैं ,कवि धर्म का इससे अधिक और क्या पालन होगा। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि 'निषिद्धों की गली का नागरिक' नवगीत संग्रह प्रत्येक दृष्टि से अपने उद्देश्य में सफल हुआ है। कथ्य और शिल्प की नव्यता देखते ही बनती है। वायवीय विषयों पर कवि ने अपना समय औरदिमाग नहीं खपाया है। धरती-पुत्र की रचनाओं में धरती की ही गंध व्याप्त है। भाषा अत्यंत सरल,सरस और प्रभावशाली है। भाषा ,पाठक और कविता के बीच बाधा नहीं बनती,बल्कि उसे सीधे कथ्य से जोड़ती है और अपने प्रवाह में बहा ले जाती है। सेवानिवृत्ति के पश्चात श्री जगदीश पंकज जी की साहित्यिक सक्रियता प्रणम्य है। पाठकों और श्रोताओं की बड़ी संख्या उनकी सर्जना की प्रशंसक हैतथा उनसे और संग्रहों की अपेक्षा करती है। मुझे पूरा विश्वास है वे साहित्य प्रेमियों को निराश नहीं करेंगे।

-संजय शुक्ल

समीक्षित कृति : 'निषिद्धों की गली का नागरिक' (नवगीत संग्रह)

रचनाकार : जगदीश पंकज , पृष्ठ : 128 (पेपरबैक) मूल्य :रु . 150/-

प्रकाशन वर्ष : 2015 ,

प्रकाशक : अनुभव प्रकाशन ,ग़ाज़ियाबाद

सम्पर्क : संजय शुक्ल

द्वारा श्री पंकज शुक्ल , सी-108 ,रजनीगंधा अपार्टमेंट, जी. टी. रोड ,साहिबाबाद,गाज़ियाबाद -201005 (उ.प्र.) , चलभाष :8130438474 , 9968369719

।।~अंतरा-शब्दशक्ति~।।
मासिक वेब पत्रिका
प्रवेशांक
जुलाई 2017
अंक 1